इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ५ अंक ३ आश्विन मास कलियुगाब्द ५११४ अक्तूबर, २०१२

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

आवरण पृष्ठ :
मनरी बोन विहार

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

विवेकानन्दामृतम्
वेदप्रणीत धार्मिक आदर्श — स्वामी विवेकानन्द — ३

संवीक्षण
ब्रिटिश इतिहासकारों की भारतीय इतिहास दृष्टि — डॉ. रत्नेश कुमार त्रिपाठी — १३

स्नातन बौद्ध धर्म और जङ-जुङ भाषा — छेरिंग दोरजे — २२

संस्कृत में ज्ञान-विज्ञान — डॉ. ओमप्रकाश शर्मा — ३५

धर्म स्थल
मण्डी का शयामा काली मन्दिर — सीमा ठाकुर — ४२

स्थान वृत्त
बोन विहार दोलांजी — चेत राम गर्ग — ४५

सम्पादकीय

कण-कण में ईश्वर का वास

ईश्वर का वास कण-कण में है। जन-मन में व्याप्त इस सत्य सिद्धान्त का वेद में इस प्रकार जयघोष हुआ है –

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत् किञ्चित् जगत्यां जगत्।

अर्थात् जो कुछ भी इस चलायमान जगत् में विद्यमान है, उन सब में ईश्वर का वास है।

आधुनिक विज्ञान अपने क्रमिक सफलता के सोपान में भारतीय ऋषियों के अन्तर्दृष्टि से अन्वेषित सत्य के समीप होता जा रहा है। भारतीय शास्त्र प्रतिपादित ऋषि चिन्तन के अनुसार सत्त्व, रज और तम की त्रिगुणात्मक सृष्टि में तीनों गुणों के साम्यावस्था के समय सब कुछ परब्रह्म ईश्वर में विलीन होता है। जब ईश्वर इच्छा से यह साम्यावस्था भंग होती है तो सत्त्व, रज, तम, तीनों गुणों में आकर्षण-विकर्षण पैदा होता है और इससे ब्रह्माण्ड का निर्माण आरम्भ होता है। ब्रह्माण्ड निर्माण में महाविस्फोट (बिग बैंग) की अवधारणा बहुमान्यता प्राप्त है। आधुनिक विज्ञान के आविष्कार भी अधिकांशतः इसी अवधारणा को मान्यता प्रदान करते हैं। जिसके अनुसार परमाणु में तीन कणों इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रान की क्रियाशीलता से एक सघन पिण्ड के महाविस्फोट के साथ ब्रह्माण्ड का निर्माण आरम्भ हुआ है।

4 जुलाई, 2012 को जिनेवा में सेन्टर फॉर न्यूक्लियर रिसर्च (सर्न) के वैज्ञानिकों ने 14 वर्ष के अनथक प्रयास के महाप्रयोग में ईश्वरीय कण (गॉड पार्टिकल) को ज्ञात करने की सफलता प्राप्त की है। इस सफलता में वैज्ञानिक भारत के आध्यात्मिक ईश्वर चिन्तन के सन्निकट हुए हैं। अतः इन कणों को गॉड पार्टिकल अर्थात् ईश्वरीय कण कहना सर्वथा उपयुक्त है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर गॉड पार्टिकल को वैज्ञानिक भाषा में हिग्स बोसोन पार्टिकल नाम दिया गया है। प्रथम जनवरी, १८९४ को कोलकत्ता में जन्मे भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्र नाथ बोस ने विज्ञान जगत् को बताया कि परमाणु के नाभिक (न्यूक्लियस) में इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रान के अतिरिक्त अन्य कण भी अपार संख्या में विद्यमान हैं। इनके इस विचार को वर्ष १९६५ में ब्रिटिश वैज्ञानिक पीटर हिग्स ने आगे बढ़ाया। इसी सिद्धान्त पर वैज्ञानिकों को वर्तमान सफलता अर्जित हुई है। इसलिए ईश्वरीय कण को हिग्स बोसोन कण का नाम प्राप्त हुआ है। इसमें बोसोन नाम सत्येन्द्र नाथ बोस के बोस नाम से गृहीत है जो भारतीय मेधा की सम्पन्न शक्ति का परिचायक है।

भारतीय ऋषि मेधा ने ब्रह्माण्ड के जिन अनन्त रहस्यों को उद्घाटित किया है, ईश्वरीय कणों पर भविष्य के निरन्तर अनुसंधानों से इन रहस्यों की अनेक गुत्थियां सुलझने की सम्भावनाएं प्रबल हुई हैं।

विनीत

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

वेदप्रणीत धार्मिक आदर्श

स्वामी विवेकानन्द

हमारे लिए सर्वाधिक महत्त्व का विषय है, धार्मिक चिंतन आत्मा, परमात्मा तथा धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला सब कुछ। हम संहिताओं को लेंगे। ये ऋचाओं के संग्रह हैं और मानो प्राचीनतम आर्य साहित्य हैं, वस्तुतः ये संसार के सबसे पुरातन साहित्य हैं। इनसे भी प्राचीनतर साहित्य के कुछ छोटे-मोटे अंश यहां-वहां भले ही रहे हों, पर उन्हें यथार्थतः ग्रन्थ या साहित्य नहीं कहा जा सकता। संकलित ग्रन्थ के रूप में ये ही संसार में प्राचीनतम हैं और इनमें आर्यों की आदिकालीन भावनाएँ, उनकी आकांक्षाएँ तथा उनकी रीति-नीति के सम्बन्ध में उठनेवाले प्रश्न आदि चित्रित हैं। प्रारम्भ में ही हमें एक बड़ी विचित्र कल्पना मिलती है। इन ऋचाओं में भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इन देवताओं को देव या द्युतिमान कहा गया है। ये देव अनेक हैं। एक हैं, इन्द्र, दूसरे वरुण, मित्र, पर्जन्य आदि-आदि। एक के बाद एक, पौराणिक और रूपक-कथाओं के विभिन्न पात्र क्रमशः हमारे सामने आते हैं। उदाहरणार्थ वज्रधारी इन्द्र-मनुष्य लोक में वर्षा को रोकने वाले सर्प पर वज्र का आघात करते दिखते हैं। वे अपने वज्र को फेंकते हैं, सर्प मर जाता है और वर्षा की झड़ी लग जाती है। लोगों में प्रसन्नता छा जाती है और वे यज्ञ द्वारा इन्द्र की पूजा करते हैं। वे यज्ञवेदी बनाते हैं, पशु की बलि देकर उसके पके मांस का नैवेद्य इन्द्र को अर्पण करते हैं। सोमलता उनकी एक प्यारी वनस्पति थी। वह लता क्या थी, यह आज कोई नहीं जानता, उसका अब बिल्कुल लोप हो गया है। पर ग्रन्थों से मालूम होता है कि उसे कुचलने से दुधिया जैसा एक रस निकलता था, उसमें खमीर उठाया जाता था और यह भी पता लगता है कि ऐसा सोमरस नशीला होता था। इसे भी वे इन्द्र एवं अन्यान्य देवताओं को अर्पित करते थे और स्वयं भी पीते थे। कभी-कभी वे इसे कुछ अधिक पी गये कि असम्बद्ध बातें करने लगे। वैसा ही वरुण के सम्बन्ध में है। ये एक दूसरे महाशक्ति सम्पन्न देवता हैं और उसी प्रकार अपने भक्तों की रक्षा करते हैं तथा वे भक्त सोमरस अर्पित कर उनका जयगान करते हैं। रण-देवता आदि की भी यही बात हैं पर अन्य पौराणिक कथाओं की अपेक्षा संहिता की कथाओं में वैशिष्ट्य लानेवाली एक मुख्य बात यह है कि इन देवताओं में से प्रत्येक के साथ अनन्तत्व की कल्पना सम्बद्ध है। यह अनन्त केवल भावरूप है और कभी-कभी वह 'आदित्य' नाम से वर्णित किया गया है। अन्य स्थानों में वह दूसरे देवताओं से सम्बद्ध कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, इन्द्र को लो। किसी-किसी सूक्त में तुम देखोगे कि इन्द्र देहधारी हैं, अत्यन्त शक्तिशाली हैं, कभी-कभी स्वर्णकवच पहनते हैं और नीचे उतरकर अपने भक्तों के साथ रहते हैं, भोजनादि करते हैं, असुरों से और सर्पों से लड़ते हैं, इत्यादि। फिर और एक दूसरे सूक्त में इन्द्र को बहुत उच्च पद दिया गया है। वे सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी आदि गुणों से मण्डित

किये गये हैं। ऐसा ही वरुण के सम्बन्ध में है। ये वरुण वायुदेवता हैं और जल पर इनका अधिकार है, जैसे पहले इन्द्र का था, अकस्मात् हम देखते हैं कि ये उच्च पद पर बिठा दिये गये हैं और इन्हें भी सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। वरुणदेव के इस सर्वोच्च स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाला एक सूक्त है :

वृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः।।
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतंकम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।।
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उतौ समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः।।
उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मंच्यातै वरुणास्य राज्ञः।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।

अथर्ववेद।।४।१६।।

'यह शक्तिसम्पन्न प्रभु स्वर्ग से हमारे कार्यों को अपनी आंखों के सामने होता हुआ सा देखता है। देवतागण मनुष्यों के कार्यों को जानते हैं, यद्यपि मनुष्य चाहते हैं कि अपने कार्य छिपाकर करें। कोई खड़ा हो, चलता हो, चुपके से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो या अपनी निभृत गुफा में बैठा हो — उसके सभी हाल-चाल का पता देवतागण पा जाते हैं। जब कभी दो मनुष्य गुप्त मंत्रणा करते हैं और सोचते हैं कि हम अकेले हैं, तो वहां तीसरे राजा वरुण भी होते हैं और उनकी सभी योजनाओं को जान जाते हैं। यह वसुधा उनकी है, यह विस्तीर्ण अनन्त आकाश भी उन्हीं का है, दोनों सागर उन्हीं में स्थित है, तथापि वे उस छोटे से जलाशय में ही वास करते हैं। यदि कोई गगनमण्डल के उस पार भी उड़कर जाना चाहे, तो वहां भी वह राजा वरुण के पंजे से नहीं बच सकता। उनके गुप्तचर आकाश से उतरकर संसार में सब ओर विचरते रहते हैं और उनके सहस्र नेत्र, जो अतिशय सूक्ष्म अवलोकन करते रहते हैं, पृथ्वी की सुदूर सीमा तक अपनी दृष्टि फैलाये रहते हैं।

इसी प्रकार हम अन्य देवताओं के विषय में भी अनेक उदाहरण दे सकते हैं। वे सभी एक के बाद एक उसी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए आते हैं — पहले वे देवताओं के रूप में दिखते हैं और उसके बाद उन्हें ऊपर उठाकर उनके विषय में यह धारणा उपस्थित की जाती है कि वे ऐसे 'पुरुष' हैं, जिनमें सारा ब्रह्माण्ड अवस्थित है, जो प्रत्येक हृदय को देखनेवाले साक्षी हैं और विश्व के शासनकर्ता हैं। वरुणदेव के सम्बन्ध में एक दूसरा भाव भी है और उस भाव का केवल अंकुर ही फूट पाया था कि आर्य-मन ने उसे वहीं कुचल डाला, वह है भय का भाव। एक अन्य स्थान पर हम पढ़ते हैं कि उन्हें अपने किये हुए पाप के कारण भय लगता है और वे वरुण से क्षमा मांगते हैं। भारत में भय और पाप, इन दो भावों को बढ़ने नहीं दिया गया, इसका कारण तुम बाद में समझ जाओगे, तथापि इनके अंकुर तो फूटने को ही थे। इसी को, जैसा कि तुम सब जानते हो, एकेश्वरवाद सम्बन्धी विचार का ही प्राधान्य है। पर हम देखेंगे कि आर्यों के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं लगा। उन्होंने उसे बिल्कुल ही एक आदिम प्रकार की धारणा समझ मानो एक और फेंक दिया और आगे बढ़ गये। हम हिन्दुओं की ऐसी ही धारणा है। अवश्य जब कोई हिन्दू पाश्चात्य विद्वान् पण्डितों द्वारा लिखित वेद

सम्बन्धी पुस्तकों और टीका टिप्पणियों में यह पढ़ता है कि हमारे ग्रन्थकर्त्ताओं के लेखों में केवल यही उपयुक्त शिक्षा भरी है, तब तो उसे हंसी आये बिना नहीं रहती। जिन्होंने बचपन से ही मानो अपनी माँ के दूध के साथ इस विचार का पान किया है कि एक सगुण ईश्वर का भाव ही ईश्वर सम्बन्धी उच्चतम आदर्श है। अत: जब वे देखते हैं कि संहिता के बाद ही एकेश्वरवाद की कल्पना, जिससे संहिता भरी हुई है, आर्यों द्वारा निरर्थक पायी गयी, तत्त्ववेत्ताओं और दार्शनिकों के लिए अनुपयुक्त समझी गयी और इसलिए वे आर्य अधिक तात्त्विक एवं इन्द्रियातीत सत्य की खोज में विशेष प्रयत्नशील हुए, तब वे स्वभावत: ही भारत के इन प्राचीन मनीषियों के समान विचार करने का साहस नहीं कर सकते। आर्यों की दृष्टि में एकेश्वरवाद अत्यन्त मानुषिक प्रतीत हुआ, यद्यपि उन्होंने उसके वर्णन में 'सम्पूर्ण विश्व उसी में भ्रमण करता है', 'तू ही सभी के अन्त:करणों का नियामक है' इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया। हिन्दू लोग साहसी थे और उन्हें इस बात का श्रेय देना चाहिए कि वे अपने सभी विचारों को बड़े साहस के साथ सोचते थे — इतने साहस के साथ कि उनके विचार की एक चिंगारी मात्र से पश्चिम के तथाकथित साहती तत्त्ववेता डर जाते हैं। इन आर्य मनीषियों के सम्बन्ध में प्रो. मैक्स मूलर ने यह ठीक ही कहा है कि ये लोग इतनी अधिक ऊँचाई तक चढ़े, जहां केवल उनके ही फेफड़े सांस ले सकते थे, दूसरों के फेफड़े तो इतनी ऊँचाई में फट गये होते।

जहां भी बुद्धि ले गयी, इन धीर पुरुषों ने उसका अनुरागपूर्वक अनुसरण किया — उसके लिए कोई त्याग उठा न रखा। सम्भव था कि इससे उनके हृदय के चिर-पोषित अन्धविश्वास चूर-चूर हो जाते, पर उन्होंने इसकी परवाह न की, यह भी परवाह न की कि समाज उनके सम्बन्ध में क्या सोचेगा, क्या कहेगा। वे तो साहसी थे। उन्होंने जिसे ठीक और सत्य समझा, उसी की चर्चा की और प्रचार किया।

प्राचीन वैदिक ऋषियों के सम्बन्ध में इस प्रकार विचार करने के पूर्व हम यहां पर वेदों में से एक-दो विशिष्ट बातों का उल्लेख करेंगे। हम देखते हैं कि वहां एक के बाद दूसरे देवता लिये गये हैं, उन्हें ऊपर उठाया गया है। उनकी महिमा और प्रभुता का क्रमश: वृद्धि की गयी है, और अन्त में उनमें से प्रत्येक को विश्व के उस अनन्त सगुण ईश्वर की पदवी पर बिठा दिया गया है। यह एक विशिष्ट बात है, जिसका स्पष्टीकरण होना आवश्यक है। प्रो. मैक्स मूलर इसके लिए एक नये नाम की रचना करते हैं। वे कहते हैं कि यह हिन्दुओं की विशेषता है, वे इसे 'हनोथिज़म' नाम से पुकारते हैं। इसे समझने के लिए हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं। इसकी यथार्थ मीमांसा तो उन वेदों में ही है। वेदों में जहां पर इन देवताओं का वर्णन है, उन्हें ऊपर उठाया गया है, उनकी महिमा और प्रभुता की क्रमश: वृद्धि की गयी है, बस, उसके कुछ आगे ही हमें इसका समाधान भी मिलता है। प्रश्न यह उठता है कि हिन्दुओं की पौराणिक कथाएँ अन्य जातियों की ऐसी कथाओं की अपेक्षा इतनी वैशिष्टयपूर्ण तथा भिन्न क्यों हैं? बेबिलोनी या यूनानी पौराणिक कथाओं में हम देखते हैं कि एक देवता आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है और एक उच्च अवस्था में पहुंचकर वहीं जम जाता है तथा दूसरे देवता लुप्त हो जाते हैं। मोलोकों में जिहोवा सबसे श्रेष्ठ बन जाता है और अन्य सब मोलोकों को भुला दिया जाता है, जो सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं, 'जिहोवा' देवाधिदेव के आसन पर विराजमान हो जाता है, इसी तरह यूनानी देवताओं में 'ज़ीजस' नामक देवता प्राधन्य लाभ करता है

और उत्तरोत्तर अधिकाधिक महिमान्वित होता हुआ अन्त में विश्वविधाता के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है, अन्य सभी देवता क्षीणप्रभ होकर असाधारण देवदूतों की श्रेणी में समाविष्ट हो जाते हैं। इस घटना की पुनरावृत्ति उत्तरकालीन इतिहास में भी पायी जाती है। बौद्ध और जैन लोगों ने अपने एक धर्म-प्रचारक को ईश्वर का स्थान दे दिया और अन्य देवताओं को उस 'बुद्ध या 'जिन' के अधीन माना। यह प्रणाली समस्त संसार के धर्मेतिहास में प्रचलित है, परन्तु वेदों में हम मानो इसका अपवाद पाते हैं। वहां किसी एक देवता की स्तुति की जाती है और उस समय तक यह कहा जाता है कि अन्य सब देवता उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं, और जिस देवता के वरुण द्वारा बढ़ाये जाने की बात कही गयी है, वह स्वयं ही दूसरे मण्डल में सर्वोच्च पद पर पहुंचा दिया जाता है। बारी-बारी से ये देवता सगुण ईश्वर के पद पर स्थापित होते हैं। पर इसकी व्याख्या तो उसी ग्रन्थ में पायी जाती है और वह सचमुच अद्भुत व्याख्या है। वह भारत में समस्त उत्तरकालीन विचारों का विषय रही है और वहीं सारे संसार के धार्मिक क्षेत्र में आध्यात्मिक विचारधारा का विषय रहेगी, वह है ***एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।*** 'सत्ता एक है, ऋषिगण उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं, इन सभी स्रोतों में जहां इन विभिन्न देवताओं की महिमा गायी गयी है, जिस परम पुरुष के दर्शन होते हैं, वह एक ही है, अन्तर केवल दर्शन करनेवाले में है। स्रोतगायक, ऋषि और कवि उसी एक परम पुरुष का गुणगान विभिन्न छन्दों में करते हैं। ***एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति*** 'सत्ता एक ही है, ऋषियों ने उसके भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। इस एक मंत्र से बहुत से महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले हैं। सम्भवत: तुम लोगों में से कुछ को यह सुनकर आश्चर्य होता होगा कि भारत ही एक ऐसा देश है, जहां विधर्मियों पर अत्याचार कभी नहीं हुआ और जहां किसी मनुष्य को उसके धार्मिक विश्वास के कारण उत्पीड़ित नहीं किया गया। आस्तिक, नास्तिक, अद्वैतवादी, द्वैतवादी, एकेश्वरवादी सभी वहां वास करते हैं और एक साथ बिना द्वेषभाव के रहते हैं। जड़वादी चार्वाकों ने ब्राह्मणों के मन्दिरों की सीढ़ियों पर से देवताओं के विरुद्ध भी प्रचार किया, वे देश भर में यह उपदेश देते फिरे कि ईश्वर को मानना निरा अन्धविश्वास है। देव-देवता, देव ओर धर्म आदि की बातें निरी कपोल-कल्पनाएँ हैं, जिन्हें पुरोहितों ने अपने स्वार्थ और लाभ के लिए गढ़ा है। पर बिना उत्पीड़ित किये उन्हें ऐसे प्रचार की भी अनुमति मिल गई। बुद्धदेव जहां कहीं गये, उन्होंने हिन्दुओं द्वारा पवित्र मानी जानेवाली सभी पुरातन बातों को मिट्टी में मिला देने का प्रयत्न किया, पर उनके विरुद्ध एक आवाज़ तक नहीं उठायी गई और उन्होंने परिपक्व वृद्धावस्था में अपने शरीर का त्याग किया। ऐसा ही जैनियों के सम्बन्ध में हुआ, जो ईश्वर सम्बन्धी धारणा की हंसी उड़ाते थे। उनका कहना था, "ईश्वर हो ही कैसे सकता है? ईश्वर की कल्पना तो केवल अन्धविश्वास है।" इसी प्रकार अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। जब तक इस्लाम धर्म की लहर भारत में नहीं आयी थी, तब तक वहां के लोग यह जानते तक न थे कि धार्मिक अत्याचार किसे कहते हैं। जब विधर्मी विदेशियों द्वारा हिन्दुओं पर यह अत्याचार हुआ, तभी उन्होंने इसे प्रथम बार अनुभव किया। आज भी यह बात सर्वविदित है कि ईसाइयों के गिरजाघर बनाने में हिन्दुओं ने कितनी सहायता दी है और उन्हें सहायता देने के लिए वे किस तरह सदैव तत्पर रहते हैं। वहां धर्म के नाम पर रक्तपात कभी नहीं किया गया। यहां तक कि वेदों में विश्वास न करनेवाले वे धर्म भी, जो भारत की भूमि में उपजे और फले-फूले हैं, उसी प्रकार प्रभावित हुए है। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म को लिया जा सकता है। बौद्ध धर्म कुछ बातों में एक महान् धर्म है, पर बौद्ध धर्म और वेदान्त को समान समझना भूल है। उन दोनों

का अन्तर उसी प्रकार स्पष्ट है, जैसे कि ईसाई धर्म और उद्धार-दल (Salvation Army) का। बौद्ध धर्म में महान् और अच्छी बातें हैं, पर ये बातें ऐसे मनुष्यों के हाथ पड़ गयीं, जो उन्हें सुरक्षित रखने में असमर्थ थे। तत्त्वज्ञानियों के दिये हुए रत्न सर्वसाधारण जन-समूह के हाथों में आ पड़े और जनता ने उनके विचारों को ग्रहण किया। उनमें काफी उत्साह था, उनके पास कुछ अपूर्व भाव थे महान् और लोकहितकारी भाव, पर तो भी ऐसी बातों को सुरक्षित रखने के लिए कुछ दूसरी वस्तु की आवश्कता हुआ करती है — वह है बुद्धि और विचार। तुम देखोगे कि जहां कहीं उच्च लोकहितकारी आदर्श जनसाधारण के हाथों पड़े हैं, वहां उसका प्रथम परिणाम अध:पतन ही हुआ है। वास्तव में विद्या और बुद्धि इन बातों को सुरक्षित रखती है। संसार के सामने प्रचारक-धर्म के रूप में सर्वप्रथम बौद्ध धर्म ही आया और उस युग की सारी सभ्य जातियों में उसका प्रचार किया गया, पर उस धर्म के नाम पर कहीं एक बूंद भी रक्त नहीं गिराया गया। हम इतिहास में देखते हैं कि किस प्रकार चीन देश में बौद्ध प्रचारकों पर अत्याचार किया गया, किस प्रकार सहस्रों बौद्ध प्रचारक लगातार दो-तीन सम्राटों द्वारा मौत के घाट उतार दिये गये। पर उसके बाद अन्त में बौद्धों का भाग्य चमका। एक सम्राट् ने उन अत्याचारियों से बदला लेना चाहा, पर बौद्ध प्रचारकों ने इन्कार कर दिया। इस सबके लिए हम इस निम्नोक्त मन्त्र के ऋणी हैं इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम इस मंत्र को याद रखो, 'जिसे लोग इन्द्र, मित्र, वरुण कहते हैं, वह सत्ता केवल एक ही है, ऋषि लोग उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं।'

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:।।

ऋग्वेद।१/१६४/४६।।

आधुनिक विद्वान् चाहे जो कहें, पर यह कोई नहीं जानता कि यह मंत्र कब लिखा गया था — कौन जाने, वह ८००० वर्ष पूर्व लिखा गया हो, या ९००० वर्ष पूर्व। इनमें से कोई भी धार्मिक विचार आधुनिक नहीं है, पर तो भी ये आज भी उतने ही नवीन हैं, जितने कि वे लिखने के समय थे। यही क्यों, आज तो वे अधिक नवीन हैं, क्योंकि उस प्राचीन युग में मनुष्य उतना सभ्य नहीं था, जितना कि हम आज उसे समझते हैं। तब उसने यह नहीं सीखा था कि वह इसलिए अपने भाई का गला काट ले कि वह उससे कुछ अलग विचार रखता है, उसने संसार को रक्त से नहीं नहलाया था, वह अपने भाई के लिए राक्षस नहीं बना था। तब वह मानवता के नाम पर सारी मानव-जाति का वध नहीं करता था। इसीलिए ***एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति,*** ये शब्द आज हमारे सामने अधिक नवीन रूप से आते हैं, उससे अधिक तरोताजा होकर आते हैं। जितना कि वे लिखने के समय थे। हमें आज भी यह सीखना शेष है कि सभी धर्मों का ईश्वर एक ही है, चाहे वे धर्म हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि भिन्न-भिन्न नामवाले क्यों न हों, और जो इनमें से किसी की भी निन्दा करता है, वह अपने ही ईश्वर की निन्दा करता है।

यही वह समाधान था, जिस पर वे पहुंचे थे। पर जैसा मैंने कहा, हिन्दू मन को इस प्राचीन एकेश्वरवाद की धारणा से सन्तोष नहीं हुआ। वह धारणा अधिक दूर तक नहीं जा सकी, उससे दृश्य-जगत् की घटनाओं का समाधान नहीं हुआ। जगत् का एक शासनकर्ता ईश्वर मान लेने से जगत् का स्वरूप ठीक-ठीक समझ में नहीं आता, कभी नहीं आता। विश्व का एक विधाता मान

लेने से विश्व व्यापार का समाधान नहीं होता, और यदि वह विधाता विश्व के बाहर हो, तब तो बात और भी जटिल हो जाती है। ऐसा विधाता भले ही नैतिक पथ प्रदर्शक हो, सर्वशक्तिमान हो, पर वह इस विश्व पहेली का हल नहीं हो सकता।

अब हम विश्व के सम्बन्ध में उस प्रथम प्रश्न को उठाते हुए देखते हैं, जो उत्तरोत्तर गम्भीर होता जाता है और पूछता है – "यह विश्व कहां से आया? कैसे आया? यह कैसे स्थित है?" इस प्रश्न से सम्बन्धित हमें कई सूक्त मिलते हैं। इस प्रश्न को सुसम्बद्ध रूप देने के लिए कठिन प्रयास हो रहा है और इसका वर्णन निम्नोक्त सूक्त में जिस प्रकार किया गया है, उससे अधिक काव्यमय और अद्‌भुत वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा –

नासदासीनो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्
अम्भः किमासीत् गहनं गभीरम्।।
न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।।

उस समय न सत् था, न असत्, न वायु थी, न आकाश, न अन्य कुछ ही। यह सब किससे ढका था? सब किसके आधार पर स्थित था? तब मृत्यु नहीं थी, न अमरत्व ही, और न रात्रि और दिन का परिवर्तन ही था। अनुवाद करने से कविता का अधिकांश सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। ***न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः*** देखो, संस्कृत शब्दों की ध्वनि ही कैसी संगीतमयी है! ***आनीदवातं स्वधया तदेकं, तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास।*** 'वह सत्ता, वह प्राण ही मानो आवरण के रूप में ईश्वर को ढके हुए था और उसका चलायमान होना प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस एक भाव को स्मरण रखना ठीक होगा कि वह सत्ता क्रियारहित होकर स्थित थी, क्योंकि आगे चलकर हम देखेंगे कि सृष्टिसर्ग के सम्बन्ध में इस भाव का ब्रह्माण्ड विज्ञान में किस प्रकार विकास हुआ है। हम यह भी देखेंगे कि हिन्दू तत्त्वज्ञान और दर्शनशास्त्र के अनुसार यह सम्पूर्ण विश्व किस प्रकार क्रियाशील स्पन्दनों की मानों समष्टि गति है और कई काल ऐसे हुआ करते हैं, जब यह समस्त गति शान्त हो जाती हैं और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बनकर कुछ काल तक उसी अवस्था में रहती है। इसी अवस्था का वर्णन इस सूक्त में किया गया है। वह सत्ता अक्रिय थी, अचल थी, स्पन्दनरहित थी और जब सृष्टि का आरम्भ हुआ, तब वह स्पन्दित होने लगी और उसी शान्त, आत्मविधृत, अद्वितीय सत्ता से यह सृष्टि बाहर निकल आयी, उसके परे कुछ नहीं है।

तम आसीत् तमसा गूढमग्रे : अन्धकार पहले था। इस वर्णन की महिमा तुम लोगों में से वे ही समझ सकेंगे, जो भारत या किसी अन्य उष्ण देश को गये हैं और वर्षा ऋतु का आरम्भ देखा है। इस दृश्य के वर्णन का प्रयत्न तीन कवियों ने जिस प्रकार किया है, वह मुझे याद आता हैं मिल्टन कहते हैं – "प्रकाश नहीं था, अन्धकार ही दिखायी देता था।" No light but rather darkness visible (Milton) काली दास कहते हैं – "जिसका सुई से भेदन किया जा सकता है।" पर 'अन्धकार में छिपा हुआ अन्धकार' इस वैदिक वर्णन को कोई नहीं पाता। प्रत्येक वस्तु सूख रही है, झुलस रही है। सारी सृष्टि मानो जल रही है और कई दिनों से ऐसा हो रहा है। इतने में एक दिन

अपराह्न में आकाश के एक कोने में एक छोटा सा बादल का टुकड़ा दिखाई देता है और आध घण्टे के अन्दर ही वह सारी पृथ्वी को छा लेता है — बादल पर बादल छा जाते हैं और फिर प्रलयकारी घनघोर वर्षा होने लगती है। सृष्टि का कारण 'इच्छा' बतायी गई। जो सबसे पहले अस्तित्त्व में था, वही 'इच्छा' ही बौद्ध और वेदान्त दर्शनों में अत्यन्त महत्त्व की कल्पना रही है और यही आगे चलकर जर्मन दर्शन में प्रविष्ट हो, शॉपेनहावर के दर्शन की भित्तिस्वरूप बन गयी है। हम सर्वप्रथम यहां उसके विषय में सुनते हैं :

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।

नासदीय सूक्त !!१०/१२९/४!!

अब पहले इच्छा की उत्पत्ति हुई, जो मन का प्रथम बीज है। ऋषियों ने अपने हृदय में प्रज्ञा द्वारा खोजते-खोजते सत् और असत् के बीच के सम्बन्ध का पता लगाया।

यह बड़ा विचित्र वर्णन है, ऋषि अन्त में कहते हैं, ***सो अंग वेद यदि वा न वेद*** — 'कदाचित् वह (ईश्वर भी इसे नहीं जानता!' कवित्व की विशेषताओं को अलग रखते हुए, हम इस सूक्त में यह पाते हैं कि जगत् सम्बन्धी प्रश्न एक निश्चित रूप प्राप्त कर चुका है और यह भी प्रतीत होता है कि ऋषियों के मन अवश्य एक ऐसी उन्नत अवस्था में पहुंच गये हैं, जहां किसी प्रकार के साधारण उत्तरों से उनका समाधान नहीं हो सकता। हम यह देखते हैं कि उपरिस्थित 'जगन्नियन्ता' की कल्पना से भी उन्हें सन्तोष न हुआ। कई अन्य सूक्तों में भी इस सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यही भाव पाया जाता है और जैसा हम पहले देख चुके हैं कि जब वे विश्व के एक नियन्ता, एक सगुण ईश्वर की खोज में लगे हुए थे, तब वे एक के बाद दूसरे देवता को लेकर उसे उस उच्चतम पद तक उठा देते थे, उसी तरह अब हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न स्त्रोतों में एक या दूसरे भाव को लिया गया है, उसका अनन्त विस्तार किया गया है और उसे विश्व की सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का कारण बताया गया है। एक विशिष्ट भाव को आधार के रूप में लिया गया है, जिसमें सब कुछ आश्रित और स्थित है, और वही आधार यह सब बन गया हैं इसी प्रकार भिन्न-भिन्न भावों के सम्बन्ध में भी किया गया है। उन्होंने इस प्रणाली का प्रयोग 'प्राण' रूपी जीवन तत्त्व पर किया। उन्होंने प्राण तत्त्व के इस भाव का इतना विकास किया कि अन्त में वह विश्वव्यापी और अनन्त बन गया। यह प्राण तत्त्व ही सबको धारण करता है। वह केवल मानव शरीर की ही नहीं, वरन् सूर्य और चन्द्रमा की भी ज्योति है। वही प्रत्येक वस्तु को चलानेवाली शक्ति है, वही विश्व संचालिनी शक्ति है। इनमें से कई वर्णन तो बड़े ही सुन्दर, बड़े ही काव्यमय हैं। उनकी चित्रांकन की शैली बड़ी ही रम्य और अपूर्व काव्यमयी है। उदाहरणार्थ देखो, ***यत्राधि सूर उदितो विभाति*** 'जिस प्रजापतिरूपी आधार से उदय को प्राप्त हो सूर्य प्राची में लाली विखेरता हुआ प्रकाशमान होता हैं'। अस्तु तत्पश्चात् उस 'इच्छा' का, जो हमने अभी ही पढ़ा, सृष्टि के अव्यक्त बीज के रूप में उठी, यहां तक विस्तार किया गया कि अन्त में उसने विश्वेश्वर का स्थान प्राप्त कर लिया। पर इन विचारों में से कोई भी उन्हें संतुष्ट नहीं कर सका।

यहां पर यह कल्पना अत्यन्त उदात्त रूप धारण कर लेती है और अन्त में वह आदि पुरुष

में परिणत हो जाती है :

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवा:।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्यु: कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहु:।

'सृजन से पूर्व उसी एक का अस्तित्व था। वही सब पदार्थों का एकमात्र अधीश्वर है, वही इस विश्व का आधार है। वही, जो जीव-सृष्टि का जनक है, समस्त शक्ति का मूल है, समस्त देव-देवता जिसकी पूजा करते हैं, जीवन जिसकी छाया है, मृत्यु जिसकी छाया है, उसको छोड़ और किसकी पूजा करें? हिमगिरि के तुषारमण्डित उत्तुंग शिखर जिसकी महिमा का उद्गान करते है, समुद्र अपने अगाध जलसम्भार के द्वारा जिसकी महिमा की घोषणा करते हैं। पर, जैसा मैंने अभी ही कहा, इस विचार से उनका समाधान न हो सका।

अन्ततोगत्वा हम एक बड़ी ही विचित्र अवस्था पाते हैं। आर्य ऋषियों का मन अभी तक बाह्य प्रकृति में ही इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ रहा था। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि जो-जो वस्तुएँ उन्हें दिखायी दीं, उन सबमें उन्होंने इसका समाधान ढूंढा और इस प्रकार से जो कुछ उन्हें मिल सकता था, उस सबकी प्राप्ति की। सम्पूर्ण प्रकृति अधिक से अधिक उन्हें केवल इतनी ही शिक्षा दे सकी कि इस विश्व का नियन्ता एक व्यक्तिविशेष है। इससे अधिक वे बाह्य प्रकृति से और कुछ न सीख सके। संक्षेप में, बाह्य विश्व से हमें केवल एक शिल्पी की कल्पना ही प्राप्त हो सकती है, जिसे सृष्टि रचनावाद का सिद्धान्त (Design Theroy) कहते हैं। हम जानते ही हैं कि यह सिद्धान्त कुछ विशेष तर्कसंगत नहीं हैं उसमें कुछ अबोधता का आभास है; तथापि बाह्य जगत् से तो हम परमेश्वर के सम्बन्ध में बस, इतना ही जान सकते हैं कि इस जगत् को बनाने वाला कोई होना चाहिए। किन्तु सृष्टि विषयक समस्या इससे हल नहीं होती। इस कल्पना में कि इस जगत् के उपादान ईश्वर के सामने थे तथा सृजन के लिए उस ईश्वर को इन उपादानों की आवश्यकता थी, सबसे अधिक आपत्तिजनक बात तो यह है कि ईश्वर इस उपादान कारण से मर्यादित हो जाता है, क्योंकि इस उपादान की मर्यादा के भीतर ही वह कार्य कर सकता है। कारीगर सामग्रियों के बिना मकान नहीं बना सकता, अत: वह उस सामग्री की मर्यादा से मर्यादित है। जिस वस्तु के बनाने योग्य सामग्री उसके पास है, वहीं तो वह बना सकता है। अत: सृष्टि रचनावाद के सिद्धान्त से जो ईश्वर हमें प्राप्त होता है, वही अधिक से अधिक एक कारीगर मात्र है; इस जगत् का एक समयादि शिल्पी है। वह उपादान परतंत्र है, उपादानों से मर्यादित है। तब वह स्वतंत्र कैसे हो सकता है? आर्य ऋषि यह सत्य पहले ही जान चुके थे। बहुतेरे अन्य लोग तो वहीं रुक गये होते। अन्य देशों में यही हुआ, मानव मन तो वही पर पहुंचकर न रुक सका, विचारशील और मेधावी मन उससे आगे जाना चाहते थे, पर जो विचार शक्ति में उनसे पिछड़े हुए लोग थे, उन्होंने उन्हें पकड़ रखा और आगे न बढ़ने दिया। किन्तु सौभाग्यवश ये हिन्दू ऋषिगण ऐसे नहीं थे, जिनकी प्रगति कोई रोक सके। वे तो समस्या को हल करना ही चाहते थे। इसलिए अब हम देखते हैं कि वे बाह्य जगत् को छोड़ अन्तर्जगत की ओर मुड़ते हैं। सबसे पहले जो बात उनके ध्यान में आयी, वह यह थी कि बाह्य जगत् का अनुभव तथा

धर्मविषयक कोई भी प्रतीति हमें नेत्र अथवा अन्य इन्द्रियों द्वारा नहीं होती। अत: पहली समस्या जो उठी, वह थी उस कमी की खोज और हम देखेंगे, वह कमी भौतिक और नैतिक, दोनों थी। एक ऋषि कहते हैं कि तुम इस विश्व का कारण नहीं जानते, तुम्हारे और मेरे बीच में बड़ा भारी अन्तर उत्पन्न हो गया है, ऐसा क्यों? इसलिए कि तुम इन्द्रियपरक बातों की चर्चा करते रहते हो और इन्द्रिय विषयों तथा केवल धार्मिक विधि अनुष्ठानों से सन्तोष मान लेते हो, जब कि मैंने उस द्वन्द्वातीत पुरुष को जान लिया है।

मैं तुम्हारे सामने आध्यात्मिक विचारों की जिस प्रगति का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न कर रहा हूँ, उसके साथ-साथ मैं उस प्रगति के एक और अंग की ओर कुछ संकेत मात्र कर सकता हूँ; पर उसका हमारे विषय से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मैं उस पर अधिक कहना आवश्यक नहीं समझता। वह है — कर्मकाण्ड की प्रगति। जहां आध्यात्मिक विचारों की गणितीय क्रम से प्रगति हुई, वहां कर्मकाण्ड के विधि-विधान सम्बन्धी विचार ज्योमितीय क्रम से बढ़ते गए। पुराने अन्धविश्वास इस समय तक बढ़कर विधि-विधानों की एक प्रचण्ड राशि में परिणत हो गये थे और यह राशि उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी; यहां तक कि अन्त में उसने हिन्दू जीवन को कुचल सा डाला। वह आज भी विद्यमान है और हमें अच्छी तरह से जकड़े हुए है तथा हमारे जीवन के प्रत्येक अंग में ओत-प्रोत होकर उसने हमें जन्म से ही गुलाम बना रखा है। फिर भी, हम साथ ही साथ, अत्यन्त प्राचीन काल से ही, इस कर्मकाण्ड की प्रगति के विरोध में आवाजें उठती पाते हैं। वहां इस कर्मकाण्ड के विरोध में एक बड़ी भारी आपत्ति यह उठायी गयी है कि विधि-अनुष्ठानों में रुचि, विशिष्ट समय में विशिष्ट वस्त्र का परिधान, विशिष्ट प्रकार से भोजन करने की रीति तथा इसी प्रकार के धार्मिक स्वांग और आडम्बर धर्म के केवल बाहरी रूप हैं, क्योंकि तुम इन्द्रियों में ही सन्तोष मान लेते हो और उनके परे जाना नहीं चाहते। हमारे तथा प्रत्येक मनुष्य के लिए, यही तो भारी कठिनाई है। जब हम आध्यात्मिक विषयों की चर्चा सुनते हैं, तब हम अधिक से अधिक क्या करते हैं? इन्द्रियों के वृत्त में ही हमारा आदर्श सीमित रहता है और उसी के मानदण्ड से हम उन सबकी नाम-जोख करते हैं। एक व्यक्ति वेदान्त, ईश्वर और इन्द्रियातीत विषयों के सम्बन्ध में श्रवण करता है और कई दिनों तक सुनने के पश्चात् पूछता है कि आखिर इन सबसे धन कितना मिलेगा, इन्द्रिय-सुख कितना मिलेगा? कारण, स्वाभाविक ही उसका सुख-भोग केवल इन्द्रियों में रहता है। पर हमारे ऋषि तो यह कहते हैं कि इन्द्रिजन्य सुख में ही तृप्त रहना उन कारणों में से एक है, जिन्होंने सत्य और हमारे बीच एक परदा सा डाल दिया है। कर्मकाण्ड में रूचि, इन्द्रियों में तृप्ति तथा विविध मत-मतान्तरों की कल्पनाओं ने हमारे और सत्य के बीच एक आवरण डाल रखा है। हिन्दुओं के आध्यात्मिक विचारों की प्रगति में यह दूसरी महान् घटना है। हमें इस आदर्श का पता अन्त तक लगाना होगा और देखना होगा कि आगे चलकर वेदान्त के अन्तर्गत माया के अद्‌भुत सिद्धान्त में उसका किस प्रकार विकास हुआ, किस तरह इस आवरण के सिद्धान्त ने वेदान्त की यथार्थ मीमांसा हमारे सामने रखी और किस प्रकार यह जाना गया कि सत्य तो चिरकाल से ही विद्यमान था, केवल इस आवरण ने ही उसे ढाँक रखा था।

इस तरह हम देखते हैं कि इन प्राचीन आर्य मनीषियों की विचारधारा ने एक नया विषय पकड़ा। वे जान गये कि उनके प्रश्न का यथोचित समाधान बाह्य जगत् में किसी भी खोज से नहीं

मिल सकता। वे चाहे युगों तक बाहरी जगत् में ढूँढते रहें, पर उनके प्रश्नों का उत्तर उससे नहीं मिल सकता। इसीलिए उन्होंने इस दूसरे उपाय का अवलम्बन किया। इससे उन्होंने यह सीखा कि विषय-भोग की इन इच्छाओं ने तथा विधि-अनुष्ठानों की इन कामनाओं एवं धर्म के बाह्य आडम्बरों ने उनके और सत्य के बीच में आवरण डाल दिया है और यह आवरण किसी कर्मानुष्ठान द्वारा हटाया नहीं जा सकता। तब तो उन्हें अपने ही मन की ओर लौटना पड़ा और अपने में सत्य की खोज करने के लिए अपने मन का ही विश्लेषण करना पड़ा। बहिर्जगत् अक्षम रहा, इसलिए वे अन्तर्जगत् की ओर झुके और तभी वेदान्त का सच्चा तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ। यही वेदान्त दर्शन की नींव है। जैसे जैसे हम आगे बढ़ते हैं, वैसे वैसे हम देखते हैं कि उनका सम्पूर्ण अनुसन्धान अन्तर्जगत् में है। बिल्कुल प्रारम्भ से ही वे यह घोषित करते दीखते हैं कि सत्य को किसी धर्म विशेष में मत खोजो, वह तो यहीं, मनुष्य की आत्मा में ही है; यह आत्मा अत्यद्भुत है, आत्मा में ही उस सत्य की खोज करो; जो यहाँ नहीं है, वह वहाँ (बाह्य जगत् में) हो ही नहीं सकता। क्रमशः उन्होंने यह ढूँढ़ निकाला कि जो कुछ बाहर है, वह भीतरी वस्तु का, बहुत हुआ तो, एक अस्पष्ट प्रतिबिम्ब मात्र है। हम देखेंगे कि किस प्रकार ईश्वर सम्बन्धी उस पुरानी कल्पना को लेकर उन्होंने उसका संस्कार किया — किस प्रकार वे विश्व के बाहर रहने वाले विश्व के उस नियामक को मानो पकड़कर पहले विश्व के भीतर ले आये। वह ईश्वर जगत् के बाहर नहीं है, वरन् उसके अन्दर ही है; और वहाँ से वे उसे अपने हृदय में ले गये। वह यहाँ, मनुष्य के हृदय में विराजमान है — वह हमारी आत्मा की भी आत्मा है, हमारी वास्तविक सत्ता है।

वेदान्त दर्शन के यथार्थ स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण विचारों को समझना आवश्यक है। प्रथम तो यह कि वह उस अर्थ में दर्शन नहीं है, जिस अर्थ में हम कांट (Kant) और हेगेल (Hegel) के दर्शन की चर्चा करते हैं। वह न तो एक ग्रन्थ है और न किसी एक व्यक्ति की कृति ही। विभिन्न कालों में लिखित ग्रन्थों की एक श्रेणी का नाम वेदान्त है। कभी कभी तो इनमें से एक में ही पचासों भिन्न भिन्न विषय दिखाई देंगे। वे क्रमबद्ध रूप में संकलित भी नहीं हैं; मानो विचारों की टिप्पणियाँ टाँक ली गयी हों। कहीं कहीं तो बहुत से अन्य विषयों के बीच में हम कोई अद्भुत विचार पा जाते हैं। पर एक बात उल्लेखनीय है कि उपनिषदों के ये विचार सदा प्रगतिशील पाये जाते हैं। उस पुरानी अनगढ़ भाषा में, प्रत्येक ऋषि के मन की विचार—क्रियाएँ जैसी जैसी होती गईं, उसी क्रम में उसी समय मानो चित्रित कर दी गयी हों। पहले तो ये विचार बहुत ही अनगढ़ रहते हैं और तत्पश्चात् क्रमशः सूक्ष्म और सूक्ष्मतर होते हुए अन्त में वेदान्त के लक्ष्य को पहुँच जाते हैं और इस परिणति को दार्शनिक स्वरूप प्राप्त हो जाता है। प्रारम्भ में द्युतिमान देवों की खोज रही, फिर विश्व के आदि कारण की खोज की गई और फिर उसी खोज को सब वस्तुओं के उस एकत्वरूप शोध का अधिक तात्त्विक एवं स्पष्ट स्वरूप प्राप्त हो जाता है, जिसके 'ज्ञान से अन्य समस्त वस्तुएँ ज्ञात हो जाती हैं —

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।।

—मुण्डकोपनिषद् ।।१।१।३।।

संवीक्षण

ब्रिटिश इतिहासकारों की भारतीय इतिहास दृष्टि

डॉ. रत्नेश कुमार त्रिपाठी

भारतीय इतिहास का लेखन ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा कैसे और किन परिस्थितियों में प्रारम्भ हुआ, इसे जाने बिना हम उनके इतिहास लेखन को सत्य का आधार मानते हैं तो ये कहीं न कहीं इतिहास के साथ और खासकर भारतीय इतिहास के साथ अन्याय करने जैसा ही है। संसार के इतिहास में जब-जब और जहां-जहां एक कौम दूसरी कौम के शासन में आयी, वहां-वहां स्वाभाविक रूप से शासक वर्ग के लेखकों ने शासन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ऐसा इतिहास लिखा जिससे कि आम जनता में देशभक्ति, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और साहस का जागरण न होने पाये।

अंग्रेजों के लिखे भारतीय इतिहास, सामान्यत: शुरू से आखिर तक, इसी दोष से रंगे हुए हैं। शायद संसार में किसी भी देश का इतिहास इतना अधिक विकृत नहीं किया गया, जितना हिन्दुस्तान का। उस समय हिन्दुस्तान और इंगलिस्तान का संबंध ही इस तरह का था कि इस संबंध के एक बार शुरू हो जाने के बाद निष्पक्ष भारतीय इतिहास का लिखा जाना प्राय: नामुमकिन हो गया। एक ओर अंग्रेज लेखकों की साम्राज्यप्रिय दृष्टि और दूसरी ओर अंग्रेजी काल के ज्यादातर भारतीय लेखकों की विदेशी शिक्षा, मानसिक दासता और आजीविका की विकट परिस्थिति थी। नतीजा यह है कि ब्रिटिश भारतीय इतिहास की जो पुस्तकें आजकल हमें मिलती हैं, उनमें से अधिकांश में निरर्थक तुच्छ बातों पर जोर दिया जाता है और इतिहास के महत्त्वपूर्ण पहलुओं की अवहेलना की जाती है, उन्हें दबाया जाता है। ऐतिहासिक घटनाओं पर सिलसिले से गलत बयान किये जाते हैं और अनेक व्यक्तियों के चरित्र को सफेद की जगह काला और काले की जगह सफेद रंग कर हमारे सामने पेश किया जाता है। अनेक सच्ची घटनाओं का इतिहास तक पता नहीं चलता और अनेक कल्पित घटनाएं सच्ची कहकर बयान की जाती है। इसलिए इक्का-दुक्का बिरले अपवादों को छोड़कर हिन्दुस्तानियों और खासकर सरकारी विश्वविद्यालयों के हिंदोस्तानी प्रोफ़ेसरों के लिखे इतिहास इस विषय में और भी दूषित और लज्जाप्रद दिखाई देते हैं। यह सब हिन्दोस्तान की उस समय की खिलाफ-कुदरत परिस्थिति का कुदरती नतीजा है।[1]

प्राच्यवादी इतिहासकार

भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में यदि हम कुछ महत्त्वपूर्ण माने जाने वाले ब्रिटिश इतिहास लेखकों की चर्चा करें तो हमें ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में इनकी दृष्टि कुछ हद तक सकारात्मक रही किन्तु बाद के कालों में ये पूरी तरह विध्वंसकारी विचारों में बदल गयी। उदाहरणत: आर्थिक जगत में १७वीं तथा १८वीं शताब्दियों में यूरोपीय विद्वानों ने इस संदर्भ में भारत की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वास्कोडिगामा के आगमन से लेकर १८वीं शताब्दी तक अनेक विद्वानों ने भारत को 'स्वर्ण

भारत' कहा।[२] विश्व प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक शेक्सपियर ने भारत को 'महान अवसरों की चरम सीमा कहा है।[३] महाकवि मिल्टन ने अपने ग्रन्थ में भारत के धन की महिमा गायी है।[४] जर्मन दार्शनिक हीगेल ने भारत को मनोकामना की भूमि बतलाया।[५] स्विस लेखक विजोरेल लैण्डस्टोन ने लिखा है कि "भारत पहुंचने के मार्ग अनेक थे परन्तु लक्ष्य एक ही था — भारत की उपजाऊ भूमि पर पहुंचना, एक देश जो कल्पनातीत बहुमूल्य सोना-चांदी, कीमती रत्नों, मसालों तथा कीमती कपड़ों से लबालब भरा है।"[६] ऐडम स्मिथ ने भारत को प्राचीन देशों में, सबसे अमीर देशों में माना है।[७] ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक अधिकारी जान एच. हालवैल (१७११-१७८० ई.) ने लिखा कि भारतीय हिन्दुओं के सिद्धान्त ग्रन्थ पुराने ईसाइयों के ओल्ड टेस्टामेन्ट से ज्यादा प्रभावी ढंग से प्रकटीकरण करते हैं।[८] उसके शब्दों में "पौराणिक कथाओं तथा विश्व उत्पत्ति के सिद्धान्तों को, मिस्रवासियों, ग्रीकों तथा रोमवासियों से नहीं, बल्कि ब्राह्मणों के सिद्धान्तों से प्राप्त किया था।"[९]

विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक इमेनयुअल कान्ट ने प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को स्वीकार किया और लिखा, "उनका धर्म एक महान सात्विकता से पूर्ण है। कोई भी देवत्व के सिद्धान्त को सात्विक रूप से पा सकता है, जो विश्व में कहीं भी प्राप्य नहीं है।" फ्रांस की क्रान्ति के महान बौद्धिक दार्शनिक वाल्तेयर ने भारत को धर्म का गृह माना, वाल्तेयर के शब्दों में, "भारत ऐसे लोगों का है जिनसे हमने अपार ज्ञान लिया, हमने अपने चौपड़ का खेल लिया, हमने शतरंज सीखी, हमने ज्योतिष के पूर्व सिद्धान्तों तथा कथाओं को लिया जो आज हमारी हो गयी है। संक्षेप में मैं सहमत हूँ कि प्रत्येक वस्तु खगोल विद्या, नक्षत्र विद्या, आत्मतत्व ज्ञान इत्यादि हमारे पास गंगा के तटों से आये।"[१०]

उपरोक्त वर्णित विचार जो विदेशी लेखकों ने भारत के सन्दर्भ में दिये हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय भारत की वास्तविक स्थिति क्या थी। लेकिन ये विचारयोग्य है कि जिस भारत की महिमा का बखान स्वयं विदेशी लेखक करते थे वो भारत के विरोधी कैसे हो गये। अगर हम इसके मूल कारण में जाएं तो हम पायेगें कि १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक विद्वानों तथा ईसाई मिशनरियों का भारत में आगमन हुआ। यह विदेशी विशेषकर ब्रिटिश विद्वान तथा ईसाई पादरी थे जो भारत की प्राचीनता, महानता एवं व्यापकता तथा उसके विविध क्षेत्रों में योगदान से जहां एक ओर आकर्षित हुए, वहीं दूसरी ओर भयभीत भी। समान्यत: इनका उद्देश्य भारत में नवनिर्मित कम्पनी राज्य को निरन्तरता, सुरक्षा तथा सुदृढ़ता प्रदान करना था और इससे भी अधिक भारत को ईसाईयत के अनुकूल भूमि बनाना था। पहले इन्होंने भारत की अर्थव्यवस्था को झकझोरा और बाद में इनके विद्वानों ने भारत की प्राचीनता को अपना निशाना बनाया। सामान्यत: इस काल में भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश ऐतिहासिक रचनायें, तात्कालिक ब्रिटिश लेखकों में दो बातों से पूर्ण है, पहले आंशिक रूप से उनकी इंग्लैण्ड की समकालीन भूमिका तथा दूसरे आंशिक रूप से उनके साम्राज्यवादी अभियान से।[११]

ब्रिटिश इतिहासकार

भारतीय इतिहास लेखन में ब्रिटिश लेखन किस मानसिकता पर आधारित था, इसका

उदाहरण कुछ महत्त्वपूर्ण ब्रिटिश लेखकों के वर्णन से दृष्टिगोचर होता है। इस श्रृंखला का सबसे महत्त्वपूर्ण नाम आता है सर विलियम जोन्स का।

सर विलियम जोन्स (१७४६-१७९४)

भारत के इतिहास का ब्रिटिशों द्वारा विकृतिकरण विधिवत रूप से तब प्रारम्भ हुआ जब वारेन हेस्टिंग्ज योजना से १७८४ में कोलकत्ता में सर विलियम जोन्स की अध्यक्षता में ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना हुई। जिसका सर विलियम जोन्स जीवन पर्यन्त अध्यक्ष रहा। ४५ वर्षों तक इस सोसायटी का प्रत्येक सदस्य ब्रिटिश ही रहा। कोई भी भारतीय या एशिया का विद्वान इसका सदस्य नहीं बन सकता था। जिस उद्देश्य से इस सोसायटी का गठन हुआ उसके बारे में जानना और भी महत्त्वपूर्ण है। सोसायटी की स्थापना का उद्देश्य ऐशियन इतिहास, पुरातत्व, कलाओं, विज्ञानों तथा साहित्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करना था। इसके पीछे का उद्देश्य यह था कि ईसाईयत पर आधारित मूल सिद्धान्तों जैसे विश्व सृष्टि की रचना, पृथ्वी की आयु आदि के बारे में अपने पक्ष को ऐतिहासिक रूप से सही बताना तथा भारत की कालगणना तथा उसके आधारों को नकारना। स्वयं विलियम जोन्स ये मानता था कि ईसाई धर्म के प्रचार के लिए कोई भी हिन्दू चर्च से नहीं बंध सकता और न ही धर्म परिवर्तन करेगा। वह उसका एक ही मार्ग समझता था कि अपने ईसाई ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद करके उन्हें ईसाई बनाने का मार्ग प्रशस्त करना।[१२] उसने स्वयं लिखा कि "जहां तक हमारा अपने पवित्र विश्वास को हिन्दुस्तान में प्रसार करने का है वहां वर्तमान में अनेक कष्टपूर्ण बाधाएँ हैं ... हमें अपने को मान लेना चाहिए कि हिन्दू किसी भी मिशन से रोम के चर्च से या किसी अन्य चर्च से धर्मान्तिरित नहीं होगा। केवल एक मानवीय तरीका है, इतनी महान क्रान्ति के लिए अपने कुछ ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद करें।[१३]

जिस संस्कृत को अभी तक विश्व की सबसे प्राचीन भाषा माना जाता था, विलियम जोन्स ने इस पर पहली बार प्रश्न चिन्ह लगाया। उसने १७८६ ई. में अपने अध्यक्षीय भाषण में संस्कृत की प्राचीनता पर सवाल खड़े किये। जिसके बाद ब्रिटिश विद्वानों ने इसे अपनी प्रेरणा का स्रोत मान लिया। वह पूरी तरह ईसाईत के प्रति समर्पित था तथा भारतीयों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित था। उसने स्वयं कहा कि "यूरोप एक सुन्दर मालकिन है तथा एशिया एक सबसे अच्छी नौकरानी है।"[१४] कुछ भारतीय विद्वानों ने विलियम जोन्स की जमकर प्रशंसा की है। वी.एन.पुरी. ने उसे इतिहास का कोपरनिकस[१५] कहा, जिसने प्राचीन भारतीय इतिहासशास्त्र का प्रारम्भ किया। रोमिला थापर ने उसे भारत के अतीत का खोजकर्त्ता बतलाया जिससे प्राच्यवादियों या इण्डोलोजिस्ट की रचनायें प्रारम्भ हुई।[१६]

विलियम जोन्स ने भगवान राम की तुलना ग्रीक देवता डीओन्यस से की तथा भगवान राम को कुश का पुत्र बतलाया एवं एशिया में पहली नियमित सरकार बनाने वाला बताया। राम को अपने बनाये चित्र में विलियम जोन्स ने एक तलवार लिए हुए दिखलाया। उसने डीओ-यसीयन कहानियों को बाल्मीकि की रामायण से भी जोड़ने की कोशिश की तथा राम के काल को लगभग ४०० ई.पूर्व बताया। विलियम जोन्स बिना किसी प्रमाण के इटली, रोम तथा भारत के

देवी–देवताओं में समानता ढूंढता है और कहता है कि भारतीयों ने सभी बातें इटली और रोम से लीं। इटली व रोम से भारत की सामानता की बात इसके इस गुप्त प्रयास का परिणम था जिसके कारण भारत की सृष्टि की रचना, मनुष्य का जीवन, जल प्रलय आदि के सन्दर्भ एवं भारत की कालगणना को ईसाई जगत की मान्यताओं के अनुरूप बिठाना था।[१७]

ईसाई मतानुसार सृष्टि का प्रारम्भ ४००४ वर्ष ई.पूर्व हुआ। १६५४ ई. में एक आयरिश विशप यूजर ने घोषणा की कि यह सृष्टि ४००४ ई. पूर्व २३ अक्टूबर को प्रात: ९ बजे प्रारम्भ हुई। साथ ही यह भी घोषित किया कि पहले प्रलय २३४९ वर्ष ई. पूर्व हुआ। उसके इस कथन को अटूट सत्य मानने को कहा तथा न मानने पर कठोरतम सजा का आदेश दिया। इस घोषणा के विपरीत मनु ने मनुस्मिृति में सृष्टि का आरम्भ एक अरब सतानवे करोड़ वर्ष से अधिक बतलाया जिसके निकटतम आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं। वस्तुत: हिन्दुओं के इस चिन्तन ने ईसाईयों के सिद्धान्तों को हिलाकर रख दिया था। १७९० ई. के भाषण में विलियम जोन्स ने भारत के इतिहास को १३०० ई. पूर्व तक सीमित रखा। इस तरह उसने भारतीय चिन्तन तथा कालगणना पर कुठाराघात किया। इसने बर्हिगमन का विचार भी प्रतिपादित किया। जो आगे आने वाले ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसी आधार पर आर्यों के भारत पर आक्रमण के सिद्धान्तों को गढ़ा जिससे भारत में अंग्रेजी राज्य की निरन्तरता को बल मिला। अपने जीवनकाल में विलियम जोन्स ने भारत के प्रति बार–बार अपने अनुभवों को बदला तथा अपने को दोषी माना। अपनी कपटता को छिपाने के लिए उसने कई बार भारत की प्रशंसा भी की।[१८]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नि:संदेह सर विलियम जोन्स ने भारतीय संस्कृति तथा इतिहास का दर्शन विस्तृत रूप से ब्रिटिश तथा यूरोपिय जगत को कराया। परन्तु यह भी सत्य है कि इसने एक कट्टर ईसाई की भांति ईसाईयत की मान्यताओं को भारत के इतिहास तथा संस्कृति के संदर्भ में योजनापूर्वक लादने का प्रयास किया। उसने भारत के इतिहास के बारे में मनगढ़ंत भ्रान्तियों तथा विसंगतियों को जन्म दिया जिसे बाद में मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने आगे बढ़ाया। जिसके कारण भारत आज भी पीड़ित है।

जेम्स मिल (१७७३–१८३६)

जेम्स मिल ईस्ट इंडिया कम्पनी में इग्लैण्ड के इंडियन हाउस में १८१९ ई. में सहायक निरीक्षक के रूप में नियुक्त हुआ और पत्र व्यवहार का काम देखता था। जीवन पर्यंत (१८३६ ई.) इसी पद पर बना रहा। इसे न तो किसी भारतीय भाषा का ज्ञान था और न ही अपने जीवन काल में कभी भारत आया था और न ही किसी भारतीय से मिला था। इसने जो भी लिखा, वह मूल ग्रंथों पर आधारित न होकर कुछ तत्कालीन यात्रियों के वर्णन, संस्मरण तथा कुछ भारतीय ग्रंथों के आंशिक अंग्रेजी अनुवादों, दूसरी श्रेणी पर आधारित ग्रन्थों से लिखा।[१९] इसका लिखा गंथ 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया' ६००० पृष्ठों का है, जो सही मायनों में भारत आने वाले ब्रिटिश प्रशासकों के लिए गाइड बन गया था, यहां तक कि अंग्रेजी में पढ़े–लिखे भारतीय भी इस ग्रन्थ को प्रमाणिक मानते हुए, इसके प्रचार से भ्रामक सोच का शिकार हुए। यह ग्रंथ बहुत लंबे समय तक भारतीय

विश्वविद्यालयों तथा भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षाओं में एक पाठ्य पुस्तक के रूप में प्रयुक्त हुआ।[20]

जेम्स मिल के इस ग्रंथ का मूल उद्देश्य था एक दो शताब्दी पूर्व बर्बर तथा पिछड़ा, कहा जाने वाले इग्लैण्ड का विश्व में सर्वाधिक सुसंस्कृत तथा सभ्य कही जाने वाली हिन्दू जाति पर प्रभुत्व जमाना। अत: अंग्रेजों में उच्चता की भावना पैदाकर, विश्व में हिन्दुओं को अत्यधिक हीन बताना, इसके ग्रंथ का मूल उद्देश्य रहा। सत्रहवीं शताब्दी के इंग्लिस्तान के शहरों के हालात को बयान करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार ड्रेपर लिखता है कि शहर वालों का बिछौना भूस का एक थैला होता था, तकिये की जगह लकड़ी का एक टुकड़ा होता था। जो शहर वाले खुशहाल थे वे चमड़े के कपड़े पहनते थे जो गरीब थे वे अपने हाथ और पैर पर पुवाल की पुलिया लपेटकर अपने को सर्दी से बचाते थे। गरीबों के लिए वैद्य न था। सफाई का कोई इन्तजाम था ही नहीं। ड्रेपर यूरोप के सदाचार को बयान करते हुए लिखता है कि जिस तेजी के साथ बीमारी उन दिनों तमाम रूपों में फैली थी उससे इस बात का साफ पता चलता है कि लोगों में दुराचार कितने भयंकर रूपों में फैला था। यदि हम उस समय के अंगेजी लेखकों का विश्वास करें तो विवाहित या अविवाहित, ईसाई पादरी या मामूली गृहस्थ, पोप लियो दसवें से लेकर के गली के भिखमंगे तक कोई वर्ग ऐसा नहीं था जो इस रोग से बचा हो। किसान अपने जमीन का मालिक नहीं होता था। सारी कौम इतनी अनपढ़ थी कि पार्लियामैंट के हाऊस ऑफ लार्डस् के बहुत से मेम्बर न पढ़ सकते थे न लिख सकते थे। ईसाई पादरियों में भयंकर दुराचार फैला हुआ था। खुले तौर पर कहा जाता था कि इंग्लिस्तान में एक लाख ऐसी औरतें हैं जिन्हें पादरियों ने खराब कर रखा है। कोई पादरी बड़े से बड़ा जुर्म करें, थोड़ा जुर्माना देकर छूट जाता था। मनुष्य हत्या के लिए पादरियों को केवल ६ सीलिंग जुर्माना था।[21] ड्रेपर ईसाई कानूनों की भयंकर नारकीय व्यवस्था का वर्णन भी करता है जिसकी किसी भी सभ्य समाज में कल्पना नहीं की जा सकती।[22]

ऐसे समाज से सभ्य हुए जेम्स मिल ने सदियों से विश्व सभ्यता पर एकछत्र राज करने वाली हिन्दू सभ्यता को दुनिया की निकृष्टम सभ्यता कहा। जेम्स मिल के अनुसार सभ्यता का अर्थ प्राचीन यूनान तथा आधुनिक यूरोप है।[23] विश्व की सभ्यताओं का विवेचन करते समय उसने ईसाई सभ्यता को सर्वोच्च तथा हिन्दू सभ्यता को निकृष्टतम लिखा है। अरबी, पारसी, मैक्सिको, पेरु, मिश्र आदि सभ्यताओं को अर्द्ध सभ्य कोटि में रखा है। जेम्स मिल ने अपने ग्रंथ में स्थान-स्थान पर हिन्दुओं को जी भर के गालियां दी हैं। इसने हिन्दू का अर्थ निम्न[24] कमजोर[25], कायर[26], हीन[27], अयोग्य[28], अधूरा[29], गुलाम[30], अनैतिक[31], डरपोक[32], झूठा तथा नपुंसक[33] बतलाया है। तात्कालिक ब्रिटिश इतिहासकार फ्रेडरिक जान शोर ने इसकी कटु आलोचना करते हुए जेम्स मिल के इतिहास को निकृष्टतम तथा इसके निष्कर्षों को खतरनाक बताया। उसका कथन है कि मिल ने अक्षम्य शरारत दोनों से की, भारत में उत्तराधिकारियों के रूप में आने वाले युवकों के मस्तिष्कों से भी तथा लोगों के हितों से भी।[34] संक्षेप में वह हिन्दू को हर जगह घृणा की दृष्टि से देखता था। सम्भतव: उपरोक्त शब्दावली का स्थान-स्थान पर प्रयोग करके वह अंग्रेजों की उच्चता तथा हिन्दुओं के प्रति

योजनापूर्वक हीनता की भावना को पैदा करना चाहता था। इसी भ्रामक प्रचार को लार्ड मैकाले ने आगे बढ़ाया।

टी.बी.मैकाले (१८००-१८५९)

मैकाले जेम्स मिल से कहीं आगे निकला। जहां जेम्स मिल हिन्दुओं से घृणा करता था वहीं मैकाले भारत की प्रत्येक वस्तु से घृणा करता था। वह भारत के प्रत्येक वस्तु में संडास तथा हर क्षेत्र को बेहूदा कहता था। जेम्स मिल ने जिस भारतीय इतिहास को अपने कुटिल व घृणित विचारों के आधार पर तैयार किया था उस इतिहास को मैकाले ने आगे बढ़ाया। मैकाले भारत में केवल ४ वर्षों तक रहा और उसने अपने इस काल को निर्वासन काल कहा।[३५] मैकाले ने भारत में अंग्रेजों की शिक्षा नीति को आगे बढ़ाया जिसके दंश से भारत आज भी नहीं उभर पाया है। मैकाले की स्थिति और उसके खतरनाक, इरादे निम्न वर्णित उसके लिखे अपने बहन और पिता के पत्रों से परिलक्षित होते हैं:

१. सन् १८३४ ई. में गवर्नर-जनरल की कौंसिल का 'ला' मेंबर नियुक्त होकर भारत आया। इस नए पद के बारे में उसने १७ अगस्त, सन् १८३३ को इंगलिस्तान में रहते हुए अपनी बहन के नाम एक पत्र में लिखा कि 'ला' मेंबर का पद, बहुत मान और आमदनी का पद है। वेतन १० हजार पौण्ड सालाना है। लोग कोलकत्ता से अच्छी तरह परिचित हैं, वहां उच्च से उच्च सरकारी पदों पर जो नियुक्त रह चुके हैं, वे मुझे विश्वास दिलाते हैं कि मैं वहां पर पांच हजार पौंड सालाना में शान के साथ रह सकता हूँ और अपना बाकी वेतन मैं सूद से बचा सकता हूँ इसलिए मुझे आशा है कि केवल ३९ साल की उम्र में जबकि मेरे जीवन की शक्तियां अपने शिखर पर होंगी, तीस हजार पौण्ड को लेकर, मैं इंग्लिस्तान वापस आ सकूंगा। इससे अधिक धन की मुझे कभी इच्छा हुई भी न थी।"[३६]

२. सन् १९३६ में अपने बाप के नाम एक पत्र में उसने लिखा कि — "मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा की योजनाओं के अनुसार काम होता रहा, तो आज से तीस साल बाद बंगाल के वाइज्जत लोगों में एक भी मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा। प्रथम पत्र से यह साफ पता चलता है कि मैकाले एक निर्धन अंग्रेज[३८] था। जिसका प्रथम उद्देश्य भारत आकर पैसा कमाना था जिससे कि वह वापस जाकर ऐश का जीवन व्यतीत कर सके।

दूसरा पत्र उसने भारत में रहकर लिखा था। मैकाले के इस पत्र पर २९ मार्च, १९०९ को 'द इण्डियन डेली न्यूज' का अंग्रेज संपादक लिखता है कि "लार्ड मैकाले की जीत वास्तव में भारतवासियों के धार्मिक व सामाजिक जीवन का नाश करने की खुले संकल्प की जीत थी।"[३९] लार्ड मैकाले के ये पत्र ब्रिटिश सरकार की उस सोच को उजागर करती है, जिन्हें उस समय ब्रिटिश सरकार के विशाल साम्राज्य के लिए अनेक वफादार और कुशल हिन्दोस्तानियों की भी जरूरत थी।

२ फरवरी, १८३५ ई. में मैकाले ने अपनी शिक्षा नीति की घोषणा की तथा अपने विशेषाधिकार मत से इसे लागू किया।[४०] १५ फरवरी, १८३५ ई. को १० हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर से अंग्रेजी भाषा के विरोध में एक पेटिशन भी प्रस्तुत की गई परन्तु इसका कोई परिणाम न हुआ और लार्ड विलियम बेंटिक ने मैकाले के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा ७ मार्च, १८३५ ई. को एक

प्रस्ताव के द्वारा पारित कर दिया गया। इस प्रस्ताव में यह पास हुआ कि "ब्रिटिश सरकार का महान उद्देश्य भारत के लोगों के लिए यूरोपियन साहित्य तथा विज्ञान की उन्नति होना चाहिए और सभी फण्ड जो शिक्षा के लिए निर्धारित किये गये हैं, केवल अंग्रेजी शिक्षा पर खर्च होगें।"[४१] इस प्रस्ताव के बाद जो मैकाले की शिक्षा नीति लागू हुई, वह आज तक चली आ रही है।

मैकाले को ह्यूगटोन और डेविड कोप ने अहंकारी, कठोर, स्वेच्छाधारी, कट्टर तथा अपने को हमेशा सही समझने वाला कहा।[४२] कार्ल मार्क्स ने उसे एक महान झूठा इतिहासकार माना है।[४३]

ऐतिहासिक सन्दर्भों को देखने से यह ज्ञात होता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना का शुद्ध उद्देश्य व्यापार था। इसने प्रारम्भ में भारत के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन से अलिप्त रहने का नाटक किया। परन्तु यह सत्य है कि भारत में गुप्त रूप से ब्रिटिश जलयानों से ईसाई पादरियों की सेना भी भारत में आती रही। समय-समय पर ब्रिटिश अधिकारियों तथा कम्पनी के डायरेक्टर्स भी इसे प्रोत्साहन देते रहे। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोपीय देशों की अनेक ईसाई संस्थाओं द्वारा ईसाईयत के प्रचार के लिए प्रयास होते रहे और भारत को ईसाई राष्ट्र बनाने के प्रयास हुए। इसके लिए तात्कालिक इतिहासकारों, प्रशासकों तथा ईसाई मिशनरियों ने संयुक्त प्रयास किया। इतिहासकार जेम्स मिल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक को तीन भागों में बांटा। पहले भाग को 'हिन्दूकाल' तथा दूसरे भाग को 'मुसलिम काल' कहा तथा तीसरे भाग को जानबूझकर 'ब्रिटिश काल' कहा ताकि ईसाई जगत की सहानुभूति प्राप्त हो सके। जान मेलकाम ने लिखा कि हमारा कर्तव्य है कि हमें भारत के ईसाई राष्ट्र होने के कारण चर्च की सहायता करनी चाहिए। मैकाले मानता था कि भारत में अंग्रेजों का समय ईसाई बनाने में लगाना चाहिए। प्रसिद्ध इतिहासकार डब्ल्यू.डब्ल्यू हण्टर ने भारत की मूल जातियों की स्थिति को ईसाईयत के प्रचार तथा धर्म परिवर्तन के लिए वरदान माना तथा उन्हें सहज प्राप्त होने वाला बतलाया।[४४]

भारतीय इतिहास के प्रति ब्रिटिश इतिहासकारों की षड्यन्त्र भरी दृष्टि जिसने हमारे इतिहास को आज इतना विकृत कर दिया है, हम आज भी उन्हीं के लिखे इतिहास का अन्धानुकरण कर रहे हैं। आजादी के पश्चात् हमारे इतिहास को ठीक किया जाना चाहिए था जो नहीं हुआ और इसका परिणाम यह है कि इन ब्रिटिश विध्वंसकारी इतिहासकारों द्वारा शुरू षड्यन्त्र आज भी जारी है। जबकि समय-समय पर महत्वपूर्ण खोजों और शोध के आधार पर रचित इतिहास को ध्वंस करने का कार्य हमारे विद्वानों और इतिहासकारों ने किया है जो निरन्तर जारी है। आवश्यकता इस बात की है कि हमें भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारत के गौरवशाली इतिहास का लेखन करना चाहिए जिससे कि भारत का सही इतिहास सबके सामने आ सके और भारत के स्वाभिमान का जागरण हो।

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना,
दिल्ली।

सन्दर्भ :

१. सुन्दरलाल, 'भारत में अंग्रेजी राज' प्रथम खण्ड, २००१, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. सं. ३।

२. डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, 'ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत' २०१०, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृ. सं. ५८।
३. सुरेन्द्रनाथ गुप्ता, ब्रिटिश द मैगनीफिसेंट एक्सप्लोयटर्स' १९७९, दिल्ली, पृ. सं. ९।
४. जॉन मिल्टन, 'पेराडाइज लॉस्ट', बुक दो, १९६८, जॉन केरी एवं अल्सेयर फाउलर, द पोयम्स ऑफ मिल्टन, लन्दन, पृ. सं. ५०८।
५. हीगेल, 'द. फिलॉसफी ऑफ हिस्ट्री' १९५६, न्यूयार्क, पृ. सं. १४२।
६. डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, 'ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत', २०१०, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृ. सं. ५९।
७. ऐडम स्मिथ, 'एन इन्क्वायरी इन्टू द नेचर एण्ड क्योजेज ऑफ वैल्थ ऑफ नेशन्स', १९३७ण आक्सफोर्ड।
८. डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, —ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत', २०१०, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृ. सं. ५९।
९. वही, पं. सं. ५९
१०. वही, पृ. सं. ६०
११. एल.पी. माथुर, 'हिस्टोरियोग्राफी एण्ड हिस्टोरियस आन माडर्न इंडिया', १९८६, नई दिल्ली।
१२. स्वामी प्रकाशनन्द सरस्वती, 'द ट्रयू हिस्ट्री एण्ड द रिलिजन ऑफ इंडिया, २०००, दिल्ली, पृ. सं. २५२-२६०
१३. वही——
१४. बी.एन. पुरी, एन्शेन्ट इंडियन हिस्टोरियोग्रेफी, ए बाई सेन्चुरी स्टडी, १९९४, दिल्ली।
१५. जे.एस. ग्रेवाल, 'करक्टरिस्टिक ऑफ अर्ली ब्रिटिश हिस्टोरिकल राइटिंग्स ऑन मेडिवेल इण्डिया, लेटर ऐटीन्थ एण्ड नाइनटिन्थ सैंचुरी ब्रिटिश हिस्टोरियन्स' १९६८, (मोहिबुल हसन, (सम्पादित) हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इंडिया), मेरठ २२८।
१६. रोमिला थापर, इन्टरप्रेटिंग अर्ली इंण्डिया, १९९२, आक्सफोर्ड, पृ. २।
१७. डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, 'ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत', २०१०, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृ. सं. ६६
१८. वही, पृ. ६७
१९. वही, पृ. ८५।
२०. रोमिला थापर, इन्टरप्रेटिंग अर्ली इंण्डिया, १९९२, आक्सफोर्ड, पृ. ६।
२१. वालमुकुन्द पाण्डेय, राष्ट्रमण्डल के निहितार्थ, २००८, विमर्श, संपादक डॉ. प्रदीप राव, महाराणाप्रताप महाविद्यालय, गोरखपुर, पृ. ९५।
२२. विस्तार से देखें 'भारत में अंग्रेजी राज', सुन्दर लाल सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
२३. नार्थ कोटे पार्किंसन, 'ईस्ट एण्ड वेस्ट', १९६५, यूएसए पृ. १९१।

२४.जेम्स मिल, 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया' भाग पांच (लंदन) पृ. २०।
२५.वही, पृ. ३२१
२६.वही, पृ. ४७४
२७.वही, पृ. ४७४
२८.वही, पृ. १५५
२९.वही, पृ. ४७४
३०.वही, पृ. ३२४
३१. वही, पृ. ११६
३२.वही, पृ. ३२४
३३.वही, पृ. ५१७
३४.फ्रेडरिक जान शोर, नोट्स आन इण्डियन एफेयर्स, भाग दो, वर्णित—डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत, २०१०, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृ. सं. ९०।
३५.थामस पिन्ने, 'द लैटर्स आफ टी.बी. मैकाले, भाग तीन, १९७६, कैम्ब्रज, पृ. VIII
३६.सुन्दरलाल, 'भारत में अंग्रेजी राज' द्वितीय खण्ड, २००१, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. सं. १६६।
३७.वही, पृ. १६७
३८.वही, पृ. १६६
३९.वही, पृ. १६७
४०.सी.एच.फिलिप्स, 'द कारसपोडेंस ऑफ लार्ड विलियम बेंटिक (१८३२—१८३५), भाग दो', संपादित, पृ. सं. १३४।
४१. डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल, 'ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत', २०१० अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना नई दिल्ली, पृ. सं. ९८।
४२.वही, पृ. १०१
४३.कार्ल मार्क्स, ''दास कैपिटल'', भाग एक, प्रथम २६०, २७१।
४४.डॉ. सतीश मित्तल, ''१८५७ का स्वातन्त्र्य समर एक पुनरावलोकन'', २००७, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृ. सं. ८, १०।

सनातन बोन धर्म तथा जङ-जुङ भाषा

छेरिंग दोरजे, जङ्-जुङ वा

बौद्ध पूर्व तिब्बत का आठवीं शताब्दी का इतिहास बताता है कि उस समय तिब्बत के निवासी एक प्राचीन धर्म बोन की शिक्षाओं का अनुपालन करते थे। इस धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा शेन-रब-मि-वो (ग्शेन-रब-मि-वो) थे। उन्होंने 'जङ-जुङ देश' से इस धर्म का प्रचार तिब्बत और चीन में किया था। आरम्भ में बोनधर्म की भाषा 'जङ-जुङ' थी। तत्पश्चात् उसका तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया।

बोनधर्म सम्बन्धी साहित्य से ज्ञात होता है कि महात्मा शेन-रब ने भी इस धर्म की शिक्षा तग-ज़िग देश के ओल-मो लुङ-रिङ महानगर में ग्रहण की थी। सम्भवत: यह प्रदेश उत्तरी अफगानिस्तान, सोवियत संघ से अलग हुए प्रदेश ताज़िकस्तान और पूर्वी ईरान का भाग था। ओल-मो लुङ-रिङ वहां का कोई प्राचीन नगर रहा होगा। इस बारे विद्वानों में काफी मतभेद है। बोन धर्म संसार के प्राचीन धर्मों में से एक रहा है, ऐसा सब मानते हैं। अतीत में इस धर्म का प्रभाव मध्य एशिया के काफी भागों में रहा था, परन्तु आज केवल मुट्ठी भर अनुयायी (अनुगामी) तिब्बत में रह गए हैं जिनमें से भी कुछ लोग भारतवर्ष में शरणार्थी बनकर रह रहे हैं।

महात्मा शेन-रब मि-वो

लिखित ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में महात्मा शेन-रब का जन्म, जाति और नागरिकता के सम्बन्ध में निश्चय करना कठिन है। उनके समय में कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कार्यों का संचालन हुआ। आज जो अनगिनत बोन साहित्य का भण्डार मिलता है जिसे उनके नाम के साथ जोड़ा जा रहा है, की प्रमाणिकता कैसे स्थापित की जाए। उनकी जीवनी जो पीछे लिखी गई है और जो बुद्धधर्म के शास्ता गौतम बुद्ध की जीवनी के आधार पर है, १०वीं शताब्दी से पूर्व की नहीं जान पड़ती है। इस जीवनी में उनके तिब्बत प्रवास और वहां पर दुष्ट ख्यब-पा लग-रिङ जो मध्य तिब्बत के कोंग-पो प्रान्त में रहता था, के बारे में निश्चित रूप से कोई सूचना नहीं मिलती। पीछे इस दुष्ट ने कई अवसरों पर महात्मा शेन-रब का घोर विरोध ही नहीं किया, अपितु उनके सात बहुत बहुमूल्य घोड़ों का भी अपहरण किया था।

महात्मा शेन-रब की शिक्षा और बोनधर्म

जैसा कि ऊपर कहा गया है, बोनधर्म का प्रचार-प्रसार सर्वप्रथम 'तग-ज़िग' देश के ओल-मो लुङ्-रिङ् महानगर से आरम्भ हुआ था। इस नगर के समीप एक अति पवित्र पर्वत

'युङ–डुङ गु–चेग' (ग्युङ–द्रुङ दगु–व्योस) विद्यमान है अर्थात् 'नौ' स्वस्तिक चिन्हों एवं पर्तों का सीढ़ीनुमा पर्वत। स्वस्तिक चिन्ह और नौ का अंक दोनों ही बोनधर्म के अति पवित्र चिन्ह और उत्तम संख्या माने जाते हैं। बोनधर्म में स्वस्तिक का बौद्धों में बज्र की भान्ति महत्त्व दिया गया है। इस चिन्ह को अमर और स्थिरता का प्रतीक माना जाता है और नौ का अंक बौन शिक्षा का नौ क्रम पथ अथवा नवम् यान को दर्शाने वाला' अति पवित्र अंक है। 'युङ्–डुङ् गु–चेग' पर्वत बारे कहा गया है कि इस पर्वत के चारों दिशाओं से चार नदियाँ निकलती हैं और पर्वतराज की चोटी श्वेत स्फटिक (मणियों) से बनी है जिसकी चमक दूर–दूर तक दिखाई देती है। इस पर्वत का यह वर्णन 'कैलाश–पर्वत' की सम्भावनाओं को दर्शाता है।

स्रिद–पा येसङ (स्रिद–प् ये सङ्स्ङ) नामक स्वर्ग में तीन भाई 'दग–पा' 'सल–वा' (ग्सल–व्) तथा 'शे–पा' (शेस्–प्) रहते थे। यह तीनों भाई बोनधर्म के आदि–आचार्य माने जाते हैं। इन तीनों भाइयों ने बोन के आदि देव 'बुम–ठि', 'लोग–गि', 'चे–चन' (बुम–रिव्र ग्लोग–गि ल्चे–च्न) से बोनधर्म की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् तीनों भाई भगवान शेन–ल्ह ओद्–कर (ग्शोन–ल्ह ओद्–द्कर) के पास गए और उनसे पूछा कि हम तीनों मनुष्य लोक जाकर वहाँ के दुःखी जीवों के दुःख निवारण हेतु किस प्रकार कार्य सम्पन्न कर सकते हैं? यह सुनकर भगवान शेन–ल्ह ओद्–कर ने कहा कि आप तीनों अलग–अलग युगों में संसार के लोगों को दुःख से छुटकारा पाने का मार्ग दिखा सकेंगे। बोन परम्परानुसार ज्येष्ठ भ्राता 'दग–पा' का युग समाप्त हो चुका है। उन्होंने विगत युग में इस संसार के दुःखी प्राणियों को बोनधर्म की शिक्षा दी और उन्होंने लोगों को सांसारिक दुःखों से अवगत कराकर उससे छुटकारा पाने का उत्तम मार्ग दिखाया।

अब मंझले भाई सल–वा, जिसे वर्तमान में 'शेन–रब' (ग्शेन–रब) के नाम से जाना जाता है, का युग आया हुआ है। इसी कारण वर्तमान युग में शेन–रब ने बोनधर्म का प्रचार कर संसार के लोगों को दुःखकारी महाविनाश से छुटकारा पाने का मार्ग दिखाया है। कनिष्ठ भ्राता शे–पा अभी अपनी पारी अर्थात् भविष्य युग का इन्तजार स्वर्ग में कर रहे हैं। भगवान शेन–ल्ह ओद–कर ने वर्तमान युग में शेन–रब को उनके महान कार्य को पूरा करने में योगदान का बचन दिया। जबकि स्रिद–पा ये–सङ् ने संसार को सुचारू रूप से चलाए रखने में सहायता करने का। यह तीन देवगण—शेन–रब, शेन–ल्ह ओद–कर और स्रिद–पा ये–सङ् बोनधर्म के साहित्य में वर्णित 'त्रिदेव' हैं। संक्षिप्त में इन्हें ल्ह–शेन–स्रिद–पा (ल्ह–ग्शेन–स्रिद–प्) सुम (ग्सुम्) भी कहा जाता है।

उचित समय आने पर शेन–रब ने इस लोक में ओल–मो लुङ्–रिङ् के एक राजघराने में राजकुमार के रूप में जन्म लिया। उन्होंने बाल्यकाल से ही लोगों को बोनधर्म की शिक्षा देना आरम्भ किया। परन्तु उनके इस लोक हित कार्य और धर्म प्रचार के मार्ग में दुष्ट ख्यब–पा लग–रिङ् सर्वदा विघ्न डालते रहे। यहां यह वर्णन हमें गौतम बुद्ध और उनके विरोधी चचेरे भाई देवदत्त का स्मरण

करवाता है जो सदैव बुद्ध को बदनाम करने की बात सोचता रहता था। ख्यब-पा लग-रिङ् की दुष्टता के कारण ही शेन-रब को शीघ्रता में तिब्बत देश में जाना पड़ा था। जब इस दुष्ट ने शेन-रब के सात कीमती और उन्नत घोड़ों को चुरा कर मध्य तिब्बत के 'कोगम्पो' प्रान्त की एक अति दुगर्म घाटी में छुपा रखा था। शेन-रब अपने घोड़ों की खोज करते-करते तिब्बत पहुंच गए थे। अन्यथा उचित समय के आने पर ही उनका धर्म प्रचार हेतु ओल-मो लुग-रिङ् से तिब्बत जाने का विचार था। ऐसा वह इसलिए सोचते थे कि तिब्बत के निवासियों के लिए बोनधर्म को ग्रहण करने का उचित समय अभी नहीं आया था।

तिब्बती धार्मिक साहित्य में 'गुप्त लेखों' का असीम भण्डार सुरक्षित है। यह गुप्त लेख क्या हैं? अतीत में तिब्बत के धर्माचारियों और गुरुओं को धर्म प्रचार के मार्ग में कई बाधाएँ और विरोध का सामना करना पड़ा था। कभी-कभी तो उनकी कृतियां विरोधियों ने अग्निदेव की भेंट कर दी थी। इन साम्प्रदायिक झगड़ों में राजा, सामन्त और धर्मस्वामियों के भाग लेने पर तो उनका अन्त अति दु:खद हो जाया करता था। इन घटनाओं से पीछा छुड़ाने का एकमात्र साधन धर्माचारियों ने ढूँढ लिया था। वे अपने कृत्यों (नवरचित साहित्य) को किसी सुरक्षित स्थान पर छुपाकर रख देते और उपयुक्त समय पर उसे खोजकर उसका प्रचार का कार्य ध्येयनिष्ठा से करते थे। खोज करने वाले वह स्वयं न होकर भविष्य के आचार्य होते थे। इन खोजने वाले आचार्यों को 'तेर-तोन' (स्तेर-स्तोन) अर्थात् खोजी गुरु कहते हैं। इस श्रेणी के साहित्य को 'तेर-मा' (स्तेर-म्) अर्थात् गुप्त लेख कहा जाता है। अतीत में तेर-तोन लोगों की एक अच्छी खासी संख्या तिब्बत में मिलती थी। तेर-मा साहित्य का प्रचलन अधिकतर बोनधर्मावलम्बी लोगों और बौद्धों के 'ञिग-मा' सम्प्रदाय में विद्यमान है।

शेन-रब की मध्यम वर्ग जीवनी को 'जेर-मिग' (ग्ज़रे-मिग) कहा जाता है। यह दो भागों में लिखी गई है। इसके अठारह अध्याय हैं। यह तेर-मा श्रेणी के साहित्य में गिना जाता है। इसके रचनाकाल एवं खोजने का समय ठीक सा आकलन नहीं हो सकता है, परन्तु कुछ विद्वान इसे ११वीं शताब्दी का मानते हैं। इसे बोन-वाङमय में प्रथम श्रेणी का माना जाता है।

शेन-रब की तृतीय और बृहत जीवनी को ज़िजिद (ग्ज़ि-ब्जिद्) कहा जाता है। इसके बारह भाग हैं। इसे 'श्रुति-साहित्य' का दर्जा प्राप्त है अर्थात् गुरु अपने चेले को मौखिक उपदेश देता है। वह भी आगे अपने अन्य चेलों को इसी प्रकार उपदेश प्रदान करता है और इस साहित्य का प्रचार 'श्रुति' द्वारा आगे से आगे चलता रहता है। कालान्तर में इस श्रेणी के साहित्य को लिपिबद्ध किया गया। इस प्रकार के साहित्य को तिब्बती भाषा में 'ञन-ग्युद् (स्यन-ग्युर्द) कहते हैं। इस प्रकार के साहित्य की रचना तब होती है जब एक देव द्वारा किसी महासिद्ध को समाधि अवस्था में ज्ञान का आलोक दिया जाता है। ज़ि-जिद के बारे में कहा जाता है कि चौदहवीं शताब्दी में महान

बोन साधक 'लोदन-ज़िङ्-पो' को समाधि अवस्था में यह ज्ञान प्रकाशमान हुआ था। इसे ज़ेर-मिग की व्याख्या कह सकते हैं, लेकिन इसमें कुछ ऐसे विषयों पर भी चर्चाएं की गई हैं जो ज़ेर-मिग में नहीं मिलती है। उदाहरणत: लोक विचार, लोक-रीतियाँ, पशु-पक्षियों की रोचक कहानियाँ आदि। इसमें वर्णित विषयों का आधार धार्मिक है और यह एक महाकाव्य जैसा लगता है।

बोन साहित्य लेखों में शुद्ध बोनधर्म सम्बन्धी तथ्यों तथा विवरणों की कमी है इनमें सामान्य बोन विषयों को बौद्ध सिद्धान्तों के साथ समिश्रण करके दर्शाया गया है। उदाहरणत: बौद्धों का कर्म सिद्धान्त और उसका फल, पुनर्जन्म, दु:खनिवारण के साथ-साथ निर्वाण प्राप्ति जैसे बहुत से ऐसे विषयों का समावेश है जो बुद्धधर्म में बताए गए हैं। इसमें बोनधर्म के प्रवर्तक 'तोपना-शेन-रब-मि-वो, को एक अलौकिक शक्ति का स्वामी और उनका इस संसार में अवतरण का एकमात्र लक्ष्य दु:खी जीवों को सांसारिक दु:खों से मुक्ति दिलाना ही दर्शाया गया है।

यदि यह प्रश्न किया जाए तो शेन-रब का वर्णन १०वीं शताब्दी से पूर्व मिलता है तो इसका उत्तर है, हाँ जी। पूर्वी मध्य एशिया के 'दुङ्-ह्वांग कस्बे से प्राप्त पुरालिपियों में शेन-रब मि-वो का वर्णन छ: बार आया है, जिसमें उनको प्रधान पुजारी के रूप में दिखाया गया है। यहां इन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है तो भी यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका व्यक्तित्व एक ऐसे पुजारी का रहा होगा जो मृत मनुष्य और जीवित दोनों के मध्य वार्ता करने की क्षमता रखते थे अर्थात् मृतक की आत्मा के साथ जीवित प्राणियों का सम्बन्ध स्थापित करके बोन की परम्परानुसार वे गौतम बुद्ध से पहले हुए थे।

बोन धर्म की शिक्षाएँ

शेन-रब-मि-वो द्वारा जिन शिक्षाओं का प्रचार किया जाता है, उसे दो भागों में बांटा गया है। पहला भाग जिसे गो-जि ज़ोदङ् (स्गो ब्जि म्जोद-ल्ङ्) कहा गया है, जिसका अर्थ है चार द्वार, पंचम कोष जो इस प्रकार हैं —

१. छब — कर (छब-द्कर) श्वेत जल।

२. छब नग (छब-नग्) काला जल।

३. फ्न-युल। फन देश।

४. पोन सस् (द्पोन ग्सस्) पथ प्रदर्शक।

५. थो थोग (म्थो-थोग्) शिखर अथवा कोष।

छव कर में गुह्यतन्त्र सम्बन्धी शिक्षाओं का संग्रह है और छव-नग में रहस्यवाद पर व्याख्या और अनुष्ठानों का विस्तृत वर्णन है। फनयुल में साधकों के शील तथा चर्चा तथा विहारों की नियमावली आदि का विस्तृत वर्णन और पोन-सस् में जोंग-छेन योग (शान्ति योग) के बारे में शिक्षाएँ हैं। यदि इसकी व्याख्या बौद्ध पद्धति अनुसार करें तो छब-कर तन्त्र और फनयुल सूत्र हैं।

अन्त में पंचम कोष थो–थोग में इन चारों का एक बार समालोचन किया गया है।

इसके इतिरिक्त बोन शिक्षाओं में नौ यानों का वर्णन किया गया हैं जो अति महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इन नौ यानों को आगे तीन भागों में बांटा गया है जो उत्तरी भाग, दक्षिणी भाग और मध्यम भाग नौ यानों का निम्नलिखित विभाजन भी है —

१. प्रथम चार यानों को कर्मयान (ति. ग्युल–थेग–प्) कहा गया है।

२. द्वितीय चार यानों को फलयान ((ति. ब्रस–थेग–प्) कहा गया है।

३. तृतीय और अन्तिम यान को जोग छेन यान कहा गया है।

जङ–ज़ुङ देश

प्राचीन बोन धर्म ग्रंथों में एक समृद्ध राज्य जङ–ज़ुङ का वर्णन आता है। आज यह राज्य विस्मृति के गर्भ में समा गया है। बोन ग्रन्थों के अनुसार बोन धर्म के प्रवर्तक महात्मा शेन–रब ने इस देश में यहां की भाषा जङ–ज़ुङ कद (जङ–ज़ुङ स्कद) में बोन धर्म का प्रचार किया है और बोन धर्म की प्राचीन पुस्तकें जङ–ज़ुङ भाषा में ही लिखी गई हैं। तत्पश्चात् महात्मा शेन–रब ने इसी देश से तिब्बत और चीन में बोन धर्म को फैलाया था।

हमें इस देश के सम्बन्ध में जानकारी केवल तिब्बती और चीनी स्रोतों द्वारा ही मिलती है। प्राचीनतम जानकारी मध्य एशिया के दुंग ह्वंग से प्राप्त पाण्डुलिपि (नवीं शताब्दी) में मिलती है।

यह देश तिब्बत (मध्य भाग) के पश्चिम में स्थित था, ऐसा तिब्बती इतिहास से ज्ञात होता है। अनुमानत: इस राज्य की सीमाएं पूर्व में तिब्बत (चङ प्रदेश), उत्तर में क्यून–लुङ–शान, पश्चिम में गिलगित और दक्षिण में हिमाचल पर्वत के भीतरी भागों, अर्थात् चनाब, सतलुज, गंगा, यमुना और काली गण्डक की ऊपरली उपत्यकाओं तक फैली थी। परन्तु यह विस्तृत देश का एक राज्य न होकर कई छोटे–छोटे सामन्तों के अधीन रहे होंगे। प्राप्त सूत्रों के अनुसार जङ–ज़ुङ राज्य के तीन भाग थे, भीतरी, बाह्य और मध्य जङ–ज़ुङ।

प्राचीन भारतीय इतिहास में इस देश का नाम नहीं मिलता है। इसका कारण भारत में इसके लिए भिन्न नाम का प्रचलन होना लगता है। पुराणों में लिखित 'सप्त द्वीप वसुमति' के किमपुरुष वर्ष का सम्बन्ध इस देश से रहा होगा, ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि किन्नर–किरात जाति को किमपुरुष भी कहा गया है। अत: प्राचीन जङ–ज़ुङ के निवासी किमपुरुष अथवा किन्नर–किरात के थे, ऐसा उनकी भाषा से भली प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है। किमपुरुष वर्ष की स्थिति को दर्शाते हुए ऐसा कहा गया है कि किमपुरुष वर्ष हेमकूट के उत्तर में हिमवत पर्वत और दक्षिण में हरिवंश का प्रदेश पड़ता है। वर्तमान में भी भारत और नेपाल में हिमाचल के साथ–साथ एक अच्छी खासी जनसंख्या इन किन्नर–किरात लोगों की है।

इन देश को ६४४ ई. में तिब्बत के राजा 'स्रोङ्–चन–पो' (स्रोङ्–व्चन–स्गाम्–पो,

६१७–६९८ ई.) ने युद्ध में हरा कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। समय के बीतने के साथ–साथ जङ–जुङ का अस्तित्व मिटता चला गया और अन्त में सम्पूर्ण क्षेत्र तिब्बती समाज में समा गया। परन्तु दसवीं शताब्दी से पूर्व तक जङ–जुङ देश के सामाजिक और धार्मिक वातावरण की गहरी छाप तिब्बत पर पड़ी है। तिब्बत में बोनधर्म का प्रचार जङ–जुङ देश से ही हुआ था।

कुछ समय पूर्व तक तिब्बत सम्बन्धी अनुसंधानों में जङ–जुङ भाषा को लेकर यह धारणा बनी थी, कि यह भाषा बोनपो आचार्यों और विद्वानों द्वारा रचित कृत्रिम भाषा है। इस धारणा में बोन धर्म ग्रन्थों की मौलिकता को बौद्ध धर्म ग्रन्थों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास था। संस्कृत से अनुदित बौद्ध ग्रन्थों में शीर्षक मूल संस्कृत भाषा में लिखने के पश्चात् तिब्बती भाषा का अनुदित शीर्षक लिखा होता है। इसी प्रकार अधिकतर बोन ग्रन्थों में भी प्रथम शीर्षक जङ–जुङ भाषा में होता है और तत्पश्चात् यह तिब्बती भाषा में लिखा रहता है। अब भाषा शास्त्रियों ने जङ–जुङ भाषा बोलने वालों को हिमालय के कठिन भीतरी क्षेत्रों में खोज निकाला है। तब से लेकर उन तिब्बत सम्बन्धी अनुसंधानियों के भ्रम टूट गए हैं।

बोन धर्म और जङ–जुङ भाषा सम्बन्धी अनुसंधान हेतु नवगति उस समय मिली, जब कुछ बोन भिक्षुओं को चीनियों द्वारा उनकी मातृ भूमि तिब्बत पर बलपूर्वक आधीन करने के पश्चात् १९५९–६० में भारत में आकर शरण ली। इन शरणार्थियों ने हिमाचल में सोलन नगर के समीप ग्राम दोलांजी में अपनी नई बस्ती बसाई और साथ ही एक बोन–विहार की भी स्थापना की। गत शताब्दी के सातवें दशक में मेरा परिचय उन बोन भिक्षुओं से हुआ था। जिसमें बिहार के संघराज, श्रद्धेय सङस ग्यस, ब्तन–ऽज़िन जोङ–दोङ और मुख्य बोन उपाध्याय श्रद्धेय तन–ज़िन, नम–दक हैं। श्रद्धेय सङ–ग्यास तन–ज़िन ने मुझे एक पुस्तिका “तिब्बती जङ जुङ शब्द कोष” भेंट की। जिसका बोन लामा ञिमा–मा डग–पा ने १८५३ में संकलन किया था। इस कोष में मुझे मेरी अपनी लाहुल बोली ‘पुनन–कद’ के कई शब्द मिले। लगातार अध्ययन के पश्चात मुझे लाहुल में बोली जाने वाली तीनों बोलियों ति–नन, मन–चद और पुनन बोलियों के शब्द और किन्नौर में बोली जाने वाली विभिन्न समुदायों की बोलियां के शब्द भी इस शब्द कोश में मिले। बोनपो जो अपनी धार्मिक भाषा जङ–जुङ कहते हैं, वे इसे लुप्त भाषा ही मान रहे थे। इसकी चर्चा मैंने श्रद्धेय संघराज और उपाध्याय और अन्य बोन भिक्षुओं से की और कुछ शब्दों का अर्थ सहित उच्चारण भी किया।

वे यह जान कर चकित रह गए कि उनकी धार्मिक भाषा जङ–जुङ कद बोलने वाले आज भी संसार में विद्यमान है। तत्पश्चात् इस विषय पर आगे भी बोनपो भिक्षुओं और विद्वानों से मन्त्रणा होती रही। इन्हीं दिनों में ञिमा डग–पा के तिब्बती–जङ–जुङ शब्द कोष को आधार मान कर और जी.ए. ग्रियर्सन द्वारा संकलित “भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण” पुस्तक में छपी पश्चिमी हिमाचली बोलियों जिसमें लाहुलस्पिति, किन्नौर, कुमाऊं, गढ़वाल और नीती आदि क्षेत्रों में बोली जाने वाली

बोलियों पर टिप्पणी सहित लेख मि. एरिक हाड़ ने लिखा था। तत्पश्चात् बोन धर्म जङ-जुङ प्रदेश पर देविड सनेलग्रोब और डॉ. सम-तन ग्यल-छन खरमै द्वारा लिखित समाग्रियों ने खोज के लिए आगे को मार्ग खोल दिया। आज दर्जनों लोग बोन धर्म और जङ-जुङ प्रदेश और वहां की भाषाओं पर खोज कार्य कर रहे हैं।

अब भाषाविदों और शोधकर्त्ताओं के अनुसांधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि बोन धर्म की धार्मिक भाषा जङ-जुङ कोई कृत्रिम भाषा नहीं, बल्कि इस भाषा को बोलने वाले अब भी जम्बूद्वीप में विद्यमान हैं। यह भाषा तिब्बती-वर्मी भाषा परिवार से सम्बन्धित है और इस भाषा को दैनिक जीवन में प्रयोग करने वाले लोग हिमालय के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र से हिमाचल प्रदेश तक छितरे रूप से दुर्गम क्षेत्रों में अतीत काल से बसे हुए है। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के दाफला और त्योतो समुदाय तथा भूटान के शर-छोग पा, इस भाषा की बोलियों का उपयोग अपने दैनिक जीवन में करते आ रहे हैं। वर्तमान में नेपाल और भूटान में इस भाषा की विभिन्न बोलियों को बोलने वाले समुदायों की संख्या एक दर्जन से कम नहीं है। जिनमें मुख्य है तामंग (मुरमी भाषा), थकाली, गुरुग, गाले, लिम्बू राहे, मगर और शर-छोग-पा आदि। भारत के उत्तर खण्ड में रंकास, दरमिया, चौडांस, भयांग्स और जंगाली बोलियाँ जङ-जुङ भाषा की ही उपबोलियां हैं। हिमाचल प्रदेश में भी जिला किन्नौर में बोली जाने हम्स कद, योश-वङ-कद, योश-वङ-कद और छित-कुली कद तथा जिला कुल्लू के मलाणा ग्राम में बोली जाने वाली जिला लाहुल स्पिति के लाहुल उप-मण्डल की पुनन कद, मन-छद कद, ति-नन कद और रेउं-फा भाष् जङ-जुङ भाषा की ही उप बोलियां हैं।

ञिमा डग-पा (जन्म १८१८ ई.) द्वारा लिखित तिब्ती-जङ-जुङ शब्द कोष में जङ-जुङ भाषा की चार महा भाषाओं और पांच लघु भाषाओं का उल्लेख है, फुग-पइ कद, बर-पइ कद, गो-पइ कद और फल-पद कद को महा भाषा कहा गया है। पांच लघु भाषाओं में दर-मइ कद, दिर-मइ कद, दर-मा दिर-गि स्म्रा (डा), गुगेइ स्म्रा तथा फल-पइ स्म्रा हैं। दर-मा, दिर-मा और दर-मा दिर तो स्पष्ट ही उत्तराखण्ड के भोट समुदायों की बोलियां हैं। गुगेइ स्म्रा भी पश्चिमी तिब्बत के गुगे जङ-जुङ और पु-रेङ की बोलियां हैं। परन्तु अब इन क्षेत्रों से इन बोलियां के लुप्त होने पर तिब्बती भाषा ने इनका स्थान ले लिया है।

भारतवर्ष और जङ-जुङ

तिब्बती बोन साहित्य में जिस जङ-जुङ भाषा का वर्णन किया जाता है। वह प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वर्णित किन्नर-किरात जातियों की भाषा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सौभाग्य से आज भी किन्नर जाति कहे जाने वाले लोग हिमाचल प्रदेश के जिला किन्नौर में कन्नोरे या किनोरा के प्राचीन नाम से आबाद हैं। उनकी बोलियां अथवा भाषा भी बोन साहित्य में उल्लिखित जङ-जुङ भाषा से मिलती-जुलती हैं। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने भी किनोरो को 'किन्नर'

कह कर अपनी पुस्तक 'किन्नर देश' में इनकी खूब व्याख्या की है। मैं यहां यह बता देना चाहता हूँ कि जिन पाश्चात्य और तिब्बती विद्वानों ने जङ-जुङ प्रदेश और भाषा पर अनुसंधान किए हैं, वे केवल 'एक तरफा' तिब्बती विषय को सम्मुख रखकर ही किए गए हैं। न उन्होंने किन्नर-किरात भाषा पर भारतीय और नेपाली दृष्टि से परिचय देने का प्रयत्न किया है और न ही भारतीय और नेपाली इतिहास के साथ जोड़कर अनुसंधान किए हैं। अत: यह पक्ष अब तक अछूता ही रह गया हैं महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन का पक्ष भी केवल प्राचीन भारतीय इतिहास को लेकर रहा हैं उन्होंने तिब्बती पक्ष की ओर कलम नहीं उठाई है।

किन्नर जाति के साथ-साथ प्राचीन भारतीय साहित्य में किरात जाति का भी वर्णन आता हैं। अनुमानत: किरात और किन्नर एक ही जाति के विभिन्न नाम काल भिन्नता या क्षेत्र विशेष के कारण सामाजिक वर्गीकरण से किए गए होंगे। क्योंकि किन्नरों और किरातों की भाषाओं में कोई भिन्नता दिखती नहीं है। संभवत: पूर्व कालों में किन्नर और किरात जाति उत्तर भारत और सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र में पूर्व की ओर से ब्रह्मपुत्र नदी घाटी होते हुए गंगा और सिंधु के मैदानों तक फैल गई होगी। बौद्ध साहित्य में ऐसा प्रसंग आता है कि महामानव बुद्ध के प्रवचनों का श्रवण करने किन्नर राज अपनी मण्डली समेत आते थे और श्रद्धापूर्वक बुद्ध की परिक्रमा कर एक ओर बैठकर ध्यानपूर्वक बुद्ध वचन को सुनते थे। बौद्ध सूत्र विमान क्त्थु में किरातों की बस्ती का चन्द्र-भागा नदी क्षेत्रों में होने का वर्णन आया है। मध्य युग में किरातों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण करने का वर्णन राजतरंगिणी में दर्ज है। चम्बा वंशावली में भी कीर (किरात) लोगों का चम्बा-ब्रह्मपुर पर कब्जा करने का जिक्र है। कांगड़ा में भी किरातों का शासन रहा है। बैजनाथ (कांगड़ा) के शिव मन्दिर की दीवार पर लिखे शिलालेख में बैजनाथ का नाम कीरग्राम अर्थात किरातों का गांव के रूप में आया है। अफगानिस्तान के इतिहास में भी काबुल दरिया तक किरात जाति के लोगों के आने का जिक्र है।

प्राचीन नेपाल के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि नेपाल के आदि शासक किरात ही थे। नेपालराजवंशावली जो १३८७-१३९० ई. में संस्कृत और नेपाली दोनों भाषाओं में लिखी हैं में वर्णन है कि आरम्भिक काल में नेपाल पर दो घुमन्तू पशुपालकों, गोपाल और महेशपाल राजवंशों ने राज किया था जो किरात जाति के थे। इस कुल के ३२ राजाओं ने १९०३ वर्ष और आठ मास नेपाल पर राज किया। फिर लिच्छिवियों जो भारतीय मूल के थे और जो बुद्ध के समकालीन माने जाते हैं, ने किरात शासकों को युद्ध में हराकर पूर्व की ओर खदेड़ दिया था।

इन समस्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समय में बौद्ध काल और उसके पूर्व काल में किन्नर-किरात जाति उतरी भारत और नेपाल में एक शक्तिशाली समुदाय के रूप में संगठित थी, और बहुत विस्तृत क्षेत्रों में इनका अपना स्वतन्त्र स्वशासित राज्य स्थापित था। अपने लड़ाकू बल के सहारे वे पड़ोसी राज्यों पर भी आक्रमण किया करते थे। इससे हम यह परिकल्पना कर सकते हैं कि प्राचीन काल में इनकी एक अति उन्नत धार्मिक तथा सामाजिक संस्था उत्तरी भारत

में स्थापित थी और उनकी सुदृढ़ सुसंगठित और सुव्यवस्थित शासन प्रणाली थी।

मूल जङ-जुङ निवासी

यह विषय अधिक जटिल और विशेष अनुसंधान की राह देख रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह समुदाय पूर्व की ओर से तिब्बत में प्रवेश करने वाले प्रथम मानव समुदाय हैं। क्योंकि इनकी भाषा में पुरातन चीनी भाषा, जैसा कि सि-हिआं, मि-ञग, लोलो तथा मोसे अथवा नखी भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। नखी मूलत: तिब्बत के उत्तर-पूर्वी सीमा क्षेत्र में निवास करते थे और प्राचीन जङ-जुङ वासी कोको नोर से लेकर तिब्बत और जङ-थङ पठार होते हुए पश्चिमी हिमालय तक फैले हुए थे। अत: इन लोगों की भाषाओं में जङ-जुङ के शब्द अभी भी मिलते हैं और यह लोग तिब्बती जाति से सम्बन्ध रखते थे। हाल में पश्चिमी हिमालयी भाषाओं का सम्बन्ध जङ-जुङ के भाषा में होने पर इनको हिमालयी आदिवासियों के साथ जोड़ के देखा जा रहा है और कुछ लोग इन्हें तिब्बत के आदिवासी भी मान रहे हैं।

भारतवर्ष में प्राचीन काल में प्रवेश हुए बाहरी विस्थापकों जिनमें किन्नर-किरात जाति के समुदाय हैं, तिब्बत में बसे जङ-जुङ समुदाय के सगे सहजातीय थे। जिनके विषय में भारतीयों का ज्ञान अति अल्प है, केवल इतना कहा गया है कि किन्नर समुदाय देवयोनि विशेष के हैं और इस समुदाय को गाना और बजाने वालों तक ही सीमित कर रखा है। प्राचीन मन्दिरों के दरवाजों की चौखटों में अप्सराओं और देवियों के साथ इनकी मूर्तियां खुदी और अंकित मिलती हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में किन्नरों और किरातों को धार्मिक मान्यता प्राप्त थी। इतिहासकारों द्वारा अब तक इन पर कोई गंभीर अनुसंधान कार्य नहीं किए गए हैं। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने अपनी यात्रा विवरण 'किन्नर देश' में हिमाचल प्रदेश के उत्तरी सतलुज घाटी में कन्नौरों पर खोज पूर्ण विवरण लिख कर यह प्रमाणित कर दिया है कि वर्तमान कन्नौरे ही प्राचीन किन्नर जाति के निवासी हैं जो काल के लम्बे अन्तराल मे मैदानी भाग से सिकुड़ कर दुर्गम हिमालय के कुछ भू-भागों में बस गए हैं।

प्राचीन काल में यह जन-समुदाय समूचे उत्तरी भारत में इधर से उधर विचरते हुए फैले थे। क्या इन लोगों ने तिब्बत के मार्ग से हिमालय को पार कर भारत वर्ष में प्रवेश किया होगा? इसकी संभावना कम लगती है।

अनुमानत: यह लोग उत्तर पूर्व की ओर से अराकान की पहाड़ियों को पार कर लोहित नदी क्षेत्रों से होते हुए भारत में गंगा और सिन्धु के मैदानों तक पहुंचे होंगे। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भारत और नेपाल के हिमालयी आदिवासी, किन्नर और किरात समुदायों के लोगों पर, जो पश्चिमी तिब्बत के जङ-जुङ (किन्नर-किरात) जाति समुदाय के सगे भाई बन्धु हैं, पर शोध का कार्य न के बराबर हुआ है।

बोन धर्म का प्रारम्भिक रूप

बौद्ध-पूर्व काल में प्राचीन देश जङ-जुङ और तिब्बत में कौन सा धर्म रहा होगा? इस पर पौराणिक कथाओं और श्रुत इतिहास से ज्ञात होता है कि इस देश का प्राचीन धर्म बोन-छोस अर्थात् बोन धर्म था। इस धर्म के अनुयायी आज, मुट्ठी भर ही रह गए हैं। आज इन बोन आचार्यों और लामाओं को लेकर उन्हें बौद्ध धर्मी लामाओं से पहचान करना कठिन जान पड़ता है। साधारण जन को इनकी वेश भूषा, पूजा पद्धति और अनुष्ठानों को देखकर बोन धर्मियों और बौद्ध पद्धतियों को भिन्न रूप से पहचान पाना कठिन है। बोनपाओं ने बौद्धों का अनुसरण कर अपने विहारों, पूजा विहारों, पूजा पद्धतियों और अनुष्ठानों को पूर्ण रूप से बौद्धमय कर दिया है। विहारों की बनावट, चीवरधारी भिक्षुगण, मूर्तियों और चित्रकला में समानता, ये सब एक से लगते हैं। बोन विहारों के मुख्य प्रवेश द्वारों पर बौद्धों का प्रसिद्ध चिन्ह धर्म चक्र और दो मृग — सारनाथ के ऋषि पतन मृगदाव, जहां शाक्य मुनि बुद्ध ने प्रथम बार पांच भिक्षुओं को धर्म उपदेश दिया था, को दर्शाता है और सभागारों और मन्दिरों के विशिष्ट स्थानों में बुद्ध के विख्यात प्रवचन —

ये धर्मा हेतु प्रभवा, हेतुस्तेषां तथागतो ह्यवदत।
तेषां च यो निरोध एवं वादी महा श्रमण:।।

जैसे उद्धृत किये रहते हैं। इसका कारण था जब बौद्ध धर्म ने राजाश्रय पाने के पश्चात् तिब्बत में अपनी जड़ें मजबूत कर दी थी, तो बोनपोओं की अपनी धर्म की रक्षा के लिए इसे अपनाना पड़ा, ऐसा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस नव गठित धर्म का नाम युङ-द्रुङ बोन अर्थात् स्वास्तिक बोन रखा। इसी प्रकार भारत में भी मध्य युग के आरम्भ में हिन्दू तान्त्रिक प्रचार से प्रभावित होकर बौद्ध मत के लोगों ने अपने धर्म में हिन्दू तान्त्रिक पद्धति का समावेश किया और इसे बौद्धतंत्र का नाम दिया गया। तत्पश्चात् इसे सहजयान और सिद्धवाद भी कहा गया।

यहां हम आरम्भिक या आदिम बोन धर्म की चर्चा करने जा रहे हैं जो यर-लुङ वंशीय तिब्बती नरेश स्रांग-ब्चन स्गम-पो के पूर्वकाल में रहा था।

साधारणत: बोन छोस अर्थात् बोन धर्म की गिनती संसार के आदिम धर्मों में की जाती है। अनुमानत: इसका आरम्भ प्राकृतिक शक्तियों पंच महाभूतों जिसके द्वारा संसार के प्रत्येक प्राणी गतिमान होते हैं, की पूजा और स्तुति गान आदि से होता है। इसमें अलौकिक शक्तियों को प्रसन्न करने की चेष्टायें की जाती हैं। कालान्तर में ये मान्यतायें आस्था में बदलकर पूजा करने वालों की एक अलग वर्ग या श्रेणी का सृजन करती हैं। जिसे हम विभिन्न नामों के साथ गुर, धामी, गोग्स, म्योन-बा, ल्हापा, ओझा और चेला के नाम से जानते हैं। पश्चिम के लोगों ने इसे शमनीज़म का नाम दिया तो भारतीयों ने इसे सनातन धर्म कहा है। महामानव बुद्ध ने इसे स्वास्तिक धर्म का नाम दिया था। यही प्राचीन धर्म कालान्तर में देवी-देवताओं के पूजा अर्चना करने के साथ-साथ विशेष

अनुष्ठानों का आयोजन करने लगे। ये ध्यातव्य है कि आरम्भ में देवी-देवताओं के पूजा गृह अर्थात् मन्दिरों में किसी प्रकार की देव मूर्तियां स्थापित नहीं होती थीं, केवल कुछ पूजा के सामान जिनमें वाद्य यन्त्र, जरी, धूपदानी और कपड़ों के कतरन तथा पताकाएं ही एक विशेष स्थान पर सजाये होते थे। बाद में अन्य धर्मों के प्रभाव से देव स्थानों में बोन धर्म के प्रवर्तक तोन-पा शेन-रब और देवी देवताओं की मूर्तियां स्थापित होनी आरम्भ हुई। सनातन बोन धर्म के मानने वाले पश्चिमी तिब्बत (जङ-जुङ), हिमालय क्षेत्र, मध्य एशिया और मंगोलिया के दक्षिण पूर्वी क्षेत्रों में थे। आज सनातन बोन धर्म के मानने वालों का एक समुदाय पश्चिमी हिमालय और नेपाल में है। ये लोग आज भी अपने-अपने क्षेत्रों की देवी देवताओं पर पूर्ण रूप से आस्था किये रखते हैं। यदि हम इस देव आस्था पर शोध करें तो ये आस्था किसी आधुनिक भारतीय व तिब्बती धर्मों से भिन्न लगेगी। सम्भवतः यही पौराणिक बोन धर्म था।

बोनपो परम्परानुसार बोन शास्ता शेन-रब मि-वो, तग-ज़िग देश (ईरान) के एक महान धार्मिक नेता थे। उस समय ईरान का धर्म जोराष्ट्र अर्थात् आतिश प्रस्त था। संभवतः इसी धर्म का प्रचार शेन-रब ने जङ-जुङ राज्य में किया हो। गत शताब्दी में बालतिस्तान के एक विद्वान गुलाम हसन लोबसंग ने उर्दू में एक पुस्तक "फलस्फा-ए-बोन-मत" लिखकर यह साबित करने की कोशिश की है कि लद्दाख, बालतिस्तान और गिलगित में प्राचीन समय में बोन धर्म का बोलबाला रहा था। इस पुस्तक का विशेष लेख 'सोमालेक' में प्रश्नोत्तर के रूप में 'सोमालेक' के सृष्टि रचना के बारे प्रश्न और उत्तर हैं। यह 'सोमालेक' कौन मनीषी थे? उसके बारे लेखक स्वयं भी अनभिज्ञ हैं। सम्भवतः यह मनीषी बोन तन्त्र के प्रवर्तक मि-लुस सम-लेग ही हो सकते हैं। जिनके नाम का अंग्रेजी में भाषातन्तर ह्यूमन बॉडी गुड थॉट है। उनकी तांत्रिक पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है। एक अन्य देव गुड-थोट का जिक्र जोराष्ट्र के उपदेश गाथा में भी मिलता है।

अनुमानतः फलसफा-ए बोन मत का सोमालेक, तिब्बती बोन तंत्र के प्रर्वतक मि-लुस सम-लेग और जोराष्ट्र धर्म के देव गुड थोट एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न नाम रहे होंगे। ऐसी मेरी मान्यता है।

बोन साहित्य में बोन शब्द का जङ-जुङ भाषान्तर गेर दिया गया है इसका अर्थ 'आह्वान' दिया है। पुनन बोली, जो जङ-जुङ भाषा की एक उप बोली है, में गेर का शाब्दिक अर्थ 'भय या संयम' है। मेरा इस बारे में विचार है कि बोन शब्द का मूल संस्कृत शब्द ब्राह्मण है जो नेपाली में पंडित और पुजारी अर्थ में बोहन या बाहुण हो गया है और बाद बाहुण एवं बोहन से बोन शब्द अस्तित्व में आया है।

बोन धर्म का मूल समूचे हिमालयी क्षेत्र के जनजातीय समुदायों द्वारा एक सनातन आस्था 'देववाद' अर्थात् देवी-देवताओं पर सम्पूर्ण श्रद्धा और आस्था में निहित दिखाई देता है। इस विषय

पर गहन अनुसंधान होने पर यह सत्य खुल कर सामने आ जाएगा। यहां मैं केवल, हिमाचल प्रदेश से नेपाल तक के देवास्था पर रोशनी डालना चाहूंगा। लाहुल के शीर्षदेव 'राजा गेपङ सद' बोन धर्म के एक महत्त्वपूर्ण धर्मपाल में गिना जाता है। बोन ग्रन्थों में इसे 'ग्यल-पो नि-पङ सद' कहा गया है। १३वीं शताब्दी में निर्मित नेपाल के डोलपो क्षेत्र के बोन मन्दिर सम-तन लिङ का मुख्य धर्मपाल ग्यल-पो नि-पङ सद ही है। कुमाऊं में इसे कैपङ देव के नाम से पूजते हैं।

किन्नौर के कनम और पूह ग्राम देवता का नाम डब-ला हैं। डब-ला बौद्ध देवता नहीं है। प्राचीन बोन देवता को बौद्ध लामाओं ने अपने देवताओं की पंक्तियों में शामिल कर दिया था। कनम के डब-ला देवता का तो गत शताब्दी के चौथे दशक में श्रद्धेय डो-मो गेशे लामा ने एक अन्य नाम चग-रू-चन दिया था और पूह के डब-ला को ठो-मो (स्त्री) नाम दिया था। डब-ला का शाब्दिक अर्थ 'नादात्मा' है।

बोन और तिब्बती बौद्धों में स्थानीय देवी-देवताओं की एक बहुत लम्बी सूची है। इन समस्त देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना सम्भवत: पशु बलि प्रथा से होती रही होगी। परन्तु अब बौद्ध धर्म के प्रभाव से ये प्रथा किन्नौर और लाहौल स्पिति में समाप्त प्राय: लग रही है। परन्तु वाह्य हिमालय क्षेत्रों (कुल्लू और शिमला की पहाड़ियों) में पशुबलि प्रथा आज भी जीवीत है। इस प्रथा के विरोध में कुछ ब्राह्मण धर्मी लोगों ने आवाज़ उठाई परन्तु इस प्रथा पर विशेष प्रभाव अभी तक नहीं हुआ।

कुछ वर्ष पूर्व तक तिब्बत की राजधानी ल्हासा में एक अनोखा नरबलि का अनुष्ठान 'लुद गोङ ग्यल-पो के नाम से सम्पन्न किया जाता था। इस अनुष्ठान में पोताला महल से रस्सी पर एक पुरुष को नीचे बाजार तक सरका दिया जाता था। इस अनुष्ठान का आयोजन समूचे तिब्बत राज्य में पैशाचिक दोषों से मुक्ति दिलाने हेतु होता था। इस प्रकार के अनुष्ठान पश्चिमी हिमालय के देव मन्दिरों में भुंडा और काहिका के नाम से आज भी सम्पन्न किये जाते हैं और इस अनुष्ठान का उद्देश्य भी पिशाचिक दोषों से क्षेत्र विशेष को मुक्त करना होता है। इस अनुष्ठान का सम्बन्ध प्राचीन बोन धर्म के साथ अत्यन्त गहरा लगता है। सुदूर चीन की सीमा के साथ तिब्बत के रेब-कोड क्षेत्र के लोग पर्वतों से विशेष जंगली पुष्पों को इकट्ठा करते हैं और देव-मन्दिरों में इन पुष्पों को अर्पण किया करते हैं। यही प्रथा किन्नौर और कुल्लू में अपने आराध्य देवों को जंगली पुष्प अर्पण कर सम्पन्न की जाती है। इस प्रथा को किन्नौर में 'उख्यङ' कहा जाता है। रेब-कोड क्षेत्र के निवासी अपने आराध्य देवताओं का सम्बन्ध बोन देवता के साथ रखते थे। देव गुरुओं द्वारा वर्ष के लिए भविष्यवाणी करना, देव नृत्य के समय बाम-चक्र काटना, यह सब प्राचीन बोन धर्म का हिमालयी देवास्था के साथ गुर सम्बन्ध को दर्शाता है।

अन्त में कुल्लू के दुर्गम क्षेत्र मलाणा के निवासी उनके आराध्य देवता जमलू के अधीन

अपने जीवन के प्रत्येक कार्यों को निभाते हैं। यहां के निवासी अपने को आराध्य देव जमलू की हार अथवा प्रजा मानते हैं। यहां देव मन्दिर में जमलू देवता की एक खड़ग की पूजा होती है। ठीक इसी प्रकार तिब्बती के रेब-कोड निवासी अपने आराध्य देवों की खड्ग के रूप में पूजा करते हैं।

गत शताब्दियों में मलाणा निवासियों के प्रति बहुत सी भ्रान्तियां तथाकथित शोधकर्त्ताओं ने फैलायी है। इनकी भाषा जिसे कणाशी कहते हैं को संसार की किसी भी भाषा से असंबद्ध माना है और इसे राक्षसी भाषा का नाम दिया गया है। परन्तु सत्य तो यह है कि ये कणाशी तिब्बती-वर्मी भाषा परिवार की एक उपबोली है। इस उपबोली का सम्बन्ध लाहौल की पटनी उपबोली और किन्नौर की स्नुम-छो उप बोली से है। अधिक संभावना है कि इस समाज ने अभी तक प्राचीन बोन मान्यताओं को अपनी आस्था में संजोए रखा है। भारत की भावी पीढ़ी इसकी पारखी होंगी और इस प्रकार शताब्दियों से विस्मृति के गर्भ में डूबी यहां की संस्कृति प्राचीन बोन धर्म पर रोशनी डालने में सक्षम सिद्ध होगी।

वर्तमान अनुसंधानों और खोजों से यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि जङ-जुङ समुदाय संसार की प्राचीनतम विकसित मानव जातियों से सम्बन्धित है। इनकी आस्था “देववाद” का उदय सम्भवत: मानव सभ्यता के उषा काल से ही आरम्भ होता है। सम्भवत: सनातन बोन धर्म को संसार का प्राचीन धर्म होने का श्रेय प्राप्त है।

वर्तमान में जङ-जुङ भाषा के अनुसंधानकर्त्ताओं ने देववाद और बोन तथा किन्नर किरात संस्कृति पर मूल्यवान सामग्रियां एकत्रित की हैं। साथ ही तिब्बती वर्मी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन तिब्बती चीनी भाषा परिवार के साथ करके जङ-जुङ समुदाय के मूल को खोजने का प्रयास किया है। जहां अब तक पुरातत्त्वीय इतिहासकार इन समुदायों के मूल खोजने में असमर्थ रहे हैं, सम्भवत: भाषाविद् इनके पूर्व इतिहास काल को ढूंढने में सफल हो जाएंगे। यह दूरगामी खोजों की कड़ियां सिंधु सभ्यता के अनसुलझे ऐतिहासिक प्रश्नों की कड़ियों को भी जोड़ने में सक्षम सिद्ध हो सकेंगी।

ग्राम गुसक्यार,
जिला लाहौल स्पिति (हि.प्र.)

संस्कृत में ज्ञान-विज्ञान

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा

संस्कृत अपने स्वरूप में पूर्णरूप से एक वैज्ञानिक भाषा है। नाद ब्रह्म संस्कृत भाषा के वर्णों का स्रोत है। सम्पूर्ण ध्वनि विज्ञान नाद ब्रह्म के विशिष्ट सूत्रों और पक्षों के आधार पर कालक्रमानुसार विकसित हुआ हैं। संस्कृत के वैदिक और लौकिक रूप ध्वनि विज्ञान कालक्रमिक विकास के अनुसार अस्तित्व में आए। ब्राह्मी लिपि नाद ब्रह्म के प्रतीक स्वरूपों की परिचायक है। संस्कृत भाषा की वर्ण संरचना, उच्चारण संरचना और वाक्य संरचना पूर्णतया वैज्ञानिक है। विश्व की समस्त भाषाओं में संरचना के इन मूलभूत सिद्धान्तों के किसी न किसी रूप में दर्शन होते हैं। इसी कारण संस्कृत को समस्त भाषाओं की जननी कहा जाता है। जिस भाषा का उदभव ही ब्रह्माण्ड की वैज्ञानिक प्रकृति के अनुरूप हुआ हो, निश्चय ही उसके वाङ्मय में इन वैज्ञानिक पक्षों का अवतरण स्वाभाविक है।

संस्कृत भाषा में निबद्ध वाङ्मय अपने आप में एक विशाल सागर है। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्, उपवेद, रामायण, महाभारत, श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन ग्रन्थ और लौकिक संस्कृत साहित्य की एक लम्बी शृंखला इस महासागर के मोती हैं। संस्कृत वाङ्मय के इन ग्रन्थों में पूर्ण पुरुष अर्थात् परमपुरुष से लेकर मानव विकास तक के सम्पूर्ण कालक्रमिक पक्षों की व्याख्या सुन्दर शैली में उपलब्ध होती है। संस्कृत में ज्ञान विज्ञान विषय की पृष्ठभूमि यहीं से निर्मित होती है। वेद शब्द ज्ञान का पर्याय है जो मूल धातु विद् से प्रकट होता है तथा विज्ञान शब्द क्रमबद्ध ज्ञान का वाचक है। वैदिक ग्रन्थों में निहित ज्ञान वेदों के भाष्यकर्ताओं के अनुसार स्वयं प्रकट है। वस्तुत: ऋषियों ने कालक्रम से ज्ञान और विज्ञान की महासत्ता, परमतत्त्वों और ब्रह्माण्ड के रहस्यों के दर्शन किए थे। श्री कृष्ण गीता में इस ओर संकेत करते हैं। ज्ञान और विज्ञान के व्युत्पत्तिलभ्यार्थ और उद्देश्य गीता के सप्तम अध्याय में स्पष्ट किए गए हैं –

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषत:।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।

गीता ७.२

अर्थात् विज्ञान सहित इस सम्पूर्ण ज्ञान को मैं तुम्हें कहूँगा, जिसको जान लेने के पश्चात् और कुछ भी शेष नहीं रह जाता। वास्तव में श्री कृष्ण ज्ञान और विज्ञान की जिन महासत्ताओं की ओर संकेत कर रहे हैं, उनमें ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत, कई रहस्य विद्यमान है।

विज्ञान शब्द के लिए सामान्यत: साइन्स शब्द का प्रयोग किया जाता है। साइन्स शब्द मूलत: लेटिन भाषा का पद है, जिसका सामान्य अर्थ ज्ञान अर्थात् नॉलेज होता है। परवर्ती काल में

यह शब्द विषयगत शास्त्र विशेष के लिए रूढ़ हुआ और अनुशासित हो गया। आज भी इसी अर्थ में यह शब्द प्रयोग में लाया जाता है। वेद, उपनिषद् और भारतीय दर्शन में यह शब्द तत्वों के अर्थों के रूप में परिभाषित किया गया है। इन ग्रन्थों में ज्ञान और विज्ञान के व्युत्पत्ति लभ्यार्थ स्वत: ही बृहद्स्वरूप को परिभाषित करते हैं। भगवत्पाद शङ्कर ने तत्त्वार्थ को परिभाषित करते हुए ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है –

ज्ञानं विषय: विज्ञानं विषयानुभूति:।

अर्थात् ज्ञान विषय के बोध को प्रकट करता है और विज्ञान उस बोध की तत्वानुभूति का नाम है। संस्कृत वाङ्मय में ज्ञान और विज्ञान के इन्हीं व्युत्पत्ति लभ्यार्थ सिद्धान्तों की अपने-अपने विषयों के प्रसंगों के अनुकूल व्याख्याएं की गई हैं। संस्कृत में पदार्थ विज्ञान, गतिविज्ञान, गणित, कालगणना, योग विज्ञान, सृष्टि विज्ञान, तकनीकी विज्ञान, भाषा विज्ञान, मानव और सभ्यता के कालक्रमिक ज्ञान, साहित्य ज्ञान और चिकित्सा शास्त्र जैसे ज्ञान-विज्ञान की धारा का पान किया है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा जहां इस धरती पर पैदा हुए मनुष्य (जातक) को ज्ञान की अनुभूति करवाते हैं, वहीं विज्ञान भौतिक तत्त्वों की प्रायोगिक जानकारी के साथ-साथ इस परम ऊर्जा अथवा परमसत्ता के दर्शन का मार्ग प्रशस्त करता है। ऋषि प्रज्ञा ने विज्ञान की अनेकों सम्भावनाओं को जन्म दिया है। वैज्ञानिकों ने इन्हीं सम्भावनाओं को प्रयोगशालाओं की विषयवस्तु बनाया और कई अविष्कार कर डाले। ऋषि परम्परा अखिल मानव समुदाय के उद्भव का स्रोत है। मानव विकास की वह आदि पीढ़ी है। ब्रह्म से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा से सप्तर्षि परम्परा में मनुष्य जाति के विकास का सम्पूर्ण इतिहास कालगणना के सिद्धान्तों के अनुसार निबद्ध है। संस्कृत वाङ्मय के कई ग्रन्थ इस ओर संकेत करते हैं। ऋषियों ने ब्रह्म से ब्रह्माण्ड के विकास के जिस भी सिद्धान्त को प्रदान किया, आज विज्ञान उन पर गहन चिन्तन और मनन कर रहा है। ऋषियों द्वारा साक्षात्कार किए गए सिद्धान्तों को आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में कहीं पर स्थान नहीं दिया गया है। ऐसा पाश्चात्य वैज्ञानिक चिन्तन धारा को सर्वश्रेष्ठ स्थापित करने की मानसिकता के कारण हुआ। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जिस भी आविष्कार को प्रयोगशालाओं के माध्यम से सिद्ध किया, उसका नामकरण सिद्धकर्त्ता वैज्ञानिक के नाम पर हुआ। आज भी वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किए गए अधिकतर सिद्धान्त वैदिक ऋषियों के सिद्धान्तों के अनुरूप है। वेदों में ऐसे अविष्कारों के कई सिद्धान्त प्रमाण रूप से उद्घृत किए जा सकते हैं। आज विश्व के पाठ्यक्रमों में अविष्कर्त्ता वैज्ञानिक प्रधान है और ऋषि गौण। वस्तुत: ऋषि वैज्ञानिक सिद्धान्तों में नींव के पत्थर के रूप में तो है परन्तु उस पत्थर पर खड़ा भवन ही दृष्टिगोचर होता है। यहां वेदों के कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवरण प्रस्तुत करना प्रासंगिक है। ये सिद्धान्त ऋषियों के उस वैज्ञानिक चिन्तन को रेखाङ्कित करते हैं, जिस पर आज का वैज्ञानिक अपने प्रयोग कर रहा है।

सर्वप्रथम सृष्टि रचना को ही लें। आज ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और जीवन के सृजन में सक्षम गॉड पार्टिकल अथवा ईश्वरीय कण अथवा हिग्सबोसोन पार्टिकल से सम्बन्धित महाप्रयोग एक

महामशीन के माध्यम से स्विटजरलैण्ड और फ्रांस की सीमा पर सर्न संस्था द्वारा किया जा रहा है। इसमें भारत सहित विश्व के कई जाने-माने वैज्ञानिक शोध कार्य कर रहे हैं। शोध का विषय बहुत रोचक है। जब हमारा ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आया, उससे पहले सब कुछ हवा में तैर रहा था जब हिग्सबोसोन भार ऊर्जा लेकर आया तो सभी तत्त्व आपस में जुड़ने लगे। एक चींटी से लेकर ग्रह तक का निर्माण हुआ।

वैज्ञानिक इस महाप्रयोग के माध्यम से उस क्षण को समझने का प्रयास कर रहे हैं कि जब बिगबैंग हुआ था, वह क्षण कैसा था? उस क्षण के पश्चात् सृष्टि के जो तत्व अस्तित्व में आए वे आपस में किस ऊर्जा शक्ति से जुड़े? इस महाप्रयोग ने ऋषियों की चिन्तनधारा की सूक्ष्मता को एक बार फिर से जीवन्त कर डाला है।

वेदों में ऋषियों ने प्रसिद्ध शान्ति पाठ में इस ओर महत्वपूर्ण संकेत प्रदान किए हैं। भारतीय समाज का कोई भी मांगलिक कार्य इस शान्तिपाठ के बिना आज भी पूर्ण नहीं होता। क्या है यह शान्ति पाठ जिसमें सृष्टि का रहस्य छुपा है –

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

अर्थात् परम, सब प्रकार से पूर्ण हैं। इसलिए उससे उद्भूत यह जगत भी पूर्ण है। क्योंकि उस सम्पूर्ण से ही यह सम्पूर्ण हुआ है। उस सम्पूर्ण से सम्पूर्ण के पूर्ण रूप से पृथक हो जाने पर पूर्ण ही शेष रहता है। ऋषि संकेत कर रहा है कि कोई भी परमाणु अपूर्ण नहीं है, कोई भी तत्त्व अपूर्ण नहीं है, कोई जीवन की जैव इकाई अपूर्ण नहीं है। चाहे एक कोशीय प्राणी हो या मनुष्य सब पूर्ण ही है। वस्तुत: शान्तिपाठ का यह मन्त्र जीवन और सृष्टि के गहन रहस्य की ओर संकेत करता है। श्रुति में इस रहस्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है –

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।

ईशा. उ. १६

अर्थात् जो वह है, वह परमपुरुष, मैं वही हूँ। उस पूर्ण पुरुष का लघुतम अंश मानव है और वह भी पूर्ण है। ऋषियों ने परम पुरुष से मानव के विकास तक के सृष्टि चक्र को चार चरणों में रखा है। १. परम पुरुष, २. विराट पुरुष, ३. काल पुरुष और ४. इतिहासपुरुष। वास्तव में विज्ञान घन है और विश्व उस परमसत्ता का विकास, वही परमपुरुष विराट पुरुष के रूप में अर्थात् महद् ब्रह्माण्ड चक्रों के रूप में प्रकट होता है। वही विज्ञान घन परमपुरुष ऊर्जावान है और कण-कण में विद्यमान है। तैत्तिरीयोपनिषद् में उस आदि शक्ति के रहस्य को इस प्रकार कहा गया है–

'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'

(२.६.१)

अर्थात् उस परम सत्ता ने पहले सृष्टि की और तदनन्तर वह उसी में प्रविष्ट हो गया। सृष्टि के कालक्रमिक विकास का ऋषियों ने साक्षात्कार किया। कई मन्त्रों में इसके उदाहरण विद्यमान है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त, नासदीय सूक्त, अस्यवामीय आदि इस दार्शनिक सूक्तों में सृष्टि के रहस्यों

को विभिन्न सिद्धान्तों के रूप में समझाने का प्रयास किया गया है। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र को देखें —

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

ऋ. १०.१२१.१

अर्थात् सृष्टि के पूर्व में सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही विद्यमान था, इससे ही भूत तत्वों की उत्पत्ति होती है, वही इनका एक मात्र विधाता है व स्वामी है, उसी ने पृथ्वी से गगन पर्यन्त सभी (तत्वों) को आधार व अस्तित्व प्रदान किया, हम उस आदि देव को छोड़कर किसे अपना हवि प्रदान करें। वेदों के ये मन्त्र वर्तमान में वैज्ञानिकों द्वारा किए जा रहे महाप्रयोग की विषयवस्तु के सन्दर्भ में कई महत्त्वपूर्ण रहस्यों को प्रयोग की कसौटी पर कसने का आधार प्रदान करते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा किए जा रहे प्रयोगों का निश्चय ही हमें स्वागत करना चाहिए क्योंकि ऋषियों ने सृष्टि के जिन रहस्यों को समझने का प्रयास किया था, आज का वैज्ञानिक उन पर प्रायौगिक दृष्टि से कार्य कर रहा है।

वेद वास्तव में ज्ञान—विज्ञान के स्रोत हैं। विज्ञान के विषय सूत्र रूप में विद्यमान हैं। ऋषियों ने इन्हीं सूत्रों के माध्यम से इन विषयों को सरल रीति से समाज को समझाने का प्रयास किया था। आज भी हिमाचल के ग्रामीण परिवेश में विद्यमान देवमन्दिरों में प्रयुक्त होने वाले पूजा सिद्धान्तों में पूजा की पहली 'कली' सृष्टि से सम्बन्धित होती है। कली वास्तव में मन्त्र की गाथात्मक व्याख्या है। ऋषियों की वैज्ञानिक चिन्तनधारा आज भी पूजासिद्धान्तों के जानकार गाथाकार जाने-अनजाने साधारण शैली में अपनी पूजापद्धतियों में गाकर सुनाते हैं। वस्तुतः ऋषियों ने ब्रह्माण्ड के जो रहस्य खोजे, उन्हें छन्दोबद्ध मन्त्रों में ढाला गया। छन्दों की शृंखला श्रौत परम्परा पर आधारित थी। विभिन्न ऋषिकुलों ने ज्ञान और विज्ञान के मन्त्रगत विषयों को कालक्रमानुसार जीवित रखा। ये विषय देव पूजा पद्धतियों जैसी शैली में लोक और लोक साहित्य में भी अपना स्थान बनाते गए। ऋषियों का परम उद्देश्य यही था कि लोक ज्ञान-विज्ञान के इन रहस्यों को साधारण शैली में समझे। देवमन्दिर इन उद्देश्यों के धीरे-धीरे केन्द्र बने, क्योंकि समाज की आस्था के ये केन्द्र थे। हिमाचल के देवमन्दिर ऋषियों के उद्देश्यों को समझने के महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। ऋषियों की इस चिन्तनधारा को वर्तमान वैज्ञानिक किसी और दृष्टिकोण से देखता है।

वस्तुतः ऋषियों द्वारा ब्रह्माण्ड विज्ञान और आत्म अनुसंधान के विषय वर्तमान साईन्स की परिधियों की सीमा रेखाओं के अनुसार साक्षात्कृत नहीं थे अपितु उनका दृष्टिकोण तो बृहद् था। यदि कुछ सिद्धान्त धर्मशास्त्र प्रधान है तो उतनी ही प्रौढ़ता से उन्होंने विज्ञान चिन्तन के सिद्धान्त भी मानवमस्तिष्क में उपजाए हैं। हिमाचल के देवमन्दिरों के पूजा सिद्धान्त इसके प्रमाण हैं। भारतीय तत्त्वशास्त्र और आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों के साम्य और पार्थक्य के तथ्यों को यदि एक स्थान पर उद्धृत कर विश्लेषित किया जाए तो जिज्ञासक ऋषि चिन्तनकी वैज्ञानिकता के मूल दृष्टिकोण

क्र. सं.	भारतीय तत्त्वशास्त्र	आधुनिक विज्ञान
१.	विश्व की प्रथम अवस्था — आदिअण्ड	विश्व की प्रथम अवस्था आदि अण्ड
२.	संकोच शक्ति द्वारा आदि अण्ड का निर्माण	संकोच शक्ति द्वारा आदि अण्ड का निर्माण
३.	आदि अण्ड की द्रव्यावस्था अग्नि और सोम प्रधान	आदि अण्ड की द्रव्यावस्था (प्लाजमा)
४.	आदि अण्ड की आभ्यन्तर अवस्था परमघनतम	आदि अण्ड की आभ्यन्तर अवस्था परमघनतम।
५.	आदिअण्ड की बाह्यावस्था परमभास्वर	आदि अण्ड की बाह्यावस्था परमभास्वर
६.	तापशक्ति के वर्धन से आदि अण्ड का विस्फोट	तापशक्ति के वर्धन से अण्ड का विस्फोट
७.	आदि अण्ड का 'नाद' विस्फोट	आदिअण्ड का 'बिगबैंग विस्फोट'
८.	आदि अण्ड व हिरण्यगर्भ का संरचनाकाल, १०, ६१, २९, ४९, ११३	आदि अण्ड व कॉस्मिक ऐग का संरचना काल प्रायः अनिश्चित्। कुछ के मत में १० अरब वर्ष के निकट
९.	आदि अण्ड का विस्फोट काल १० अरब, ६१ करोड़, २५ लाख ९७ हजार ११३ वर्ष	आदि अण्ड का विस्फोट का काल १० अरब वर्ष बहुसम्मत सम्भावना
१०.	विस्फोट से आदिम द्रव्य की उत्पत्ति पंचभौतिक तेजोमय मेघ	विस्फोट से आदिम द्रव्य की उत्पत्ति डस्टक्लाउड वा नेव्यूला।
११.	नभोगङ्गा की आभ्यन्तर आकृति सर्प की तरह कुण्डलाकार	नभोगङ्गा की आभ्यन्तर आकृति सर्पिल व स्पाइरल।
१२.	सूर्य का जन्मकाल ६ अरब, १९ करोड़, २९ लाख ४९ हजार ११३ वर्ष	सूर्य का जन्म काल ६ से ७ अरब वर्ष पूर्व के मध्य।
१३.	सूर्य का आभ्यन्तर द्रव्य भृगु आङ्गिरा तत्त्व का एक अग्नि चक्र	सूर्य का आभ्यन्तर द्रव्य हाईड्रोजन और हीलियम ताप चक्र
१४.	आकाश गङ्गा का आभ्यन्तर द्रव्य-सोम	आकाश गङ्गा का आभ्यन्तर द्रव्य हाईड्रोजन
१५.	महाविष्णु-जिसकी नाभि के नाल से विश्वकमल की उत्पत्ति हुई है।	व्हाईट होल का सिद्धान्त श्वेत गर्त के

क्र. सं.	भारतीय तत्त्वाशास्त्र	आधुनिक विज्ञान
		नाल व साईफन से विश्व का विकास
१६.	पृथ्वी की उत्पत्ति का काल ४, १३,२९,४९ ११३ वर्ष	पृथ्वी की उत्पत्ति का काल ४ अरब, ५० करोड़ के लगभग
१७.	पृथ्वी पर प्रथम विकृत जैव विकास-सूक्ष्म जीवाणु, पृथ्वी की सरचना के १ करोड़ ७० लाख ६४ वर्ष उपरान्त	पृथ्वी की उत्पत्ति का काल ४ अरब, ५० करोड़ वर्ष
१८.	जैव विकास का द्वितीय युग भूजलीयप्राणिज काल १अरब ९७ करोड़ २९ लाख४९ हजार ११३ वर्ष	जैव विकास का द्वितीय युग भूजलीय प्राणिज विकास २ अरब वर्ष
१९.	अन्तर नक्षत्रीय परिवर्तन द्वारा उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण की लचक से पृथ्वी पर नवीन कल्प का शुभारम्भ—श्वेत बाराह कल्प १, ९७, २९, ४९, ११३ वर्ष	गुरुत्वाकर्षण की लचक से पृथ्वी पर नवीन युग का आरम्भ २ अरब वर्ष
२०.	पृथ्वी पर व्यवस्थित जैव युग का प्रारम्भ—स्वायम्भु मन्वन्तर १, ३५, ५८, ८५, ११३ वर्ष	पृथ्वी पर व्यस्थित जैव विकास का प्रारम्भ २ अरब वर्षों से कुछ कम
२१.	पृथ्वी पर मानव का प्रथम विकास १ अरब, ९७ करोड़ वर्ष पूर्व। नवीन विकास—वैवस्वत मन्वन्तर १२ करोड वर्ष पूर्व	पृथ्वी पर मानव का प्रथम विकास प्रोटीन सिन्थिसिस के आधार पर सम्भावित अनुमान ७ $\frac{१}{२}$ करोड़ वर्ष पूर्व
२२.	पृथ्वी पर सम्पूर्ण जैव जीवन का प्रलय २, ३६, ४१, १४, ९०१ वर्ष।	पृथ्वी पर जैव जीवन का प्रलय अनिश्चित।
२३.	पृथ्वी ग्रह का सम्पूर्ण प्रलय व उसकी शेष आयु. ४ अरब, ५० करोड़, ७० लाख, ५० हजार ९०१ वर्ष।	पृथ्वी ग्रह का सम्पूर्ण प्रलय व उसकी शेष आयु ४ अरब, ५० करोड़ वर्ष सम्भावित।
२४.	सूर्य की शेष आयु व सूर्य प्रलय ६ अरब, ६६ करोड़, ७० लाख, ५० हजार ९०१ वर्ष।	सूर्य की शेष आयु व सूर्य प्रलय सम्भावित ६ अरब वर्ष। स्रोत विश्व की कालयात्रा, वासुदेव पोद्दार, पृ. ४०-४९

को सहज ही आत्मसात् कर सकता है। यहां कुछ उदाहरण उद्‌धृत किया जा रहे हैं —

वेदों और भारतीय तत्त्व शास्त्र व आधुनिक विज्ञान की उपयुक्त तालिका ऋषियों के ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी तथ्यपरक गहन चिन्तन धारा की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत प्रदान करती है। वस्तुतः यह ब्रह्माण्ड मूल रूप से चेतना, गति और गुरुत्व इन तीनों तत्त्वों से निर्तित एक विराट दृश्यमान रंगमंच है। प्रलय इन तीनों तत्त्वों का संतुलित अवस्था क्रम है। तैत्तिरोपनिषद् में विज्ञान और ब्रह्म के माध्यम से इन उपर्युक्त भावों को इस प्रकार कहा गया है —

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति।।

तै.उ. ३.५.

अर्थात् विज्ञान ब्रह्म है— इस प्रकार जाना 'क्योंकि विज्ञान से ही निश्चित ये समस्त भूत समुदाय उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने के पश्चात् विज्ञान से ही ये अस्तित्ववान हैं, अन्त में विज्ञान में ही ये सम्पूर्णतः प्रविष्ट होते हैं। वस्तुतः भारतीय दर्शन में ब्रह्म कोई मानव की आकृति की तरह दृश्यमान नहीं है, अपितु यहां विज्ञान को ही ब्रह्म कहा गया है। संस्कृत भाषा में निबद्ध वाङ्मय में ज्ञान और विज्ञान की सत्ता को जितनी सुन्दर शैली में प्रस्तुत किया गया है, पाश्चात्य जगत की ग्रन्थमाला में ऐसे उदाहरण बिरले ही उपलबध होते हैं। उपर्युक्त तालिका में निबद्ध विषय क्या संस्कृत भाषा और संस्कृत वाङ्मय की देन नहीं है? उत्तर है, हाँ।

इस प्रकार संस्कृत भाषा के जीवन्त वाङ्मय में ज्ञान और विज्ञान के शाश्वत तथ्य व सूत्र विद्यमान हैं। ऋषियों की चिन्तनधारा के सूत्र इस देववाणी में आज भी विश्व वैज्ञानिक शोध के लिए बिखरे पड़े हैं। भारत का गुलाम मानस आज भी ऋषियों द्वारा प्रदान की गई हीरे की इन मणियों की कीमत समझने में भले ही अक्षम हो परन्तु विश्व की जागरूक बुद्धि इन हीरों की परख करने में जुटी है। यदि गहराई से विचार किया जाए तो समझ में आएगा कि संस्कृत भाषा में निबद्ध संस्कृत वाङ्मय एक सुखद भविष्य की नींव निर्मित करने की निश्चय ही क्षमता रखता है।

ऐसोसिएट प्रोफेसर,
राजकीय महाविद्यालय, अर्की
जिला सोलन (हि.प्र.)

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. ईशादि नौ उपनिषद्, (व्या) हरिकृष्ण दास गोयन्दका, गीता प्रैस गोरखपुर, संवत् २००७
२. भारतीय ऋषि परम्परा, डॉ. दयानन्द भार्गव, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, १९९६
३. श्रीमद्‌भगवतद्‌गीता, गीताप्रैस गोरखपुर, संवत् २०६३
४. संस्कृत प्रभावित महासुवी एवं सिरमौरी लोकगाथाएँ, डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, २०११
५. विश्व की काल यात्रा, वासुदेव पोद्दार, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, बाबा साहेब आप्टे स्मृति भवन, नई दिल्ली, संवत् २०५६

मण्डी का श्यामाकाली मन्दिर

सीमा ठाकुर

जिला मण्डी शिवालिक और निम्न हिमालय शृंखला के मध्य अवस्थित है। मण्डी नगर समुद्र तल से ४०५० फीट ऊँचाई पर है। व्यास नदी के किनारे फैला होने के कारण यह एक उपजाऊ भू-भाग है। इसकी सीमाएं उत्तर में कांगड़ा-कुल्लू, पूर्व में कुल्लू, पश्चिम में हमीरपुर तथा बिलासपुर और दक्षिण में बिलासपुर तथा शिमला जिले के साथ लगती है। प्राचीन समय से ही मण्डी समृद्ध उच्च हिन्दू संस्कृति और भव्य मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। यह अपनी इन्हीं धार्मिक आस्थाओं और दैवीय रीतियों की वजह से इसे 'पहाड़ो की काशी' भी कहा जाता है।

प्राचीन श्यामाकाली मन्दिर, मण्डी

मण्डी के नामकरण के बारे में इतिहासकारों के अलग-अलग मत है। अधिकांश इतिहासकार मण्डी का नाम माण्डव्य ऋषि से मानते हैं। उनका कहना है कि प्राचीन काल में यह स्थान प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र था, जहां ऋषि माण्डव्य तपस्या किया करते थे जो कि एक भार्गव गोत्रीय ऋषि थे। पुराणों में भी मण्डी का उल्लेख माण्डव्य नाम से ही मिलता है। एक अन्य धारणा के अनुसार यह नगर प्राचीन काल में एक व्यापारिक केन्द्र भी रहा है। यह एक ओर यारकन्द, तिब्बत, लद्दाख और दूसरी ओर पंजाब के मैदानी भागों के केन्द्रीय स्थान पर पड़ता है जो कि प्राचीन समय में दोनों तरफ के व्यापारियों के लिए आदान-प्रदान का केन्द्र था। आज भी हम किसी व्यापारिक केन्द्र को 'मण्डी' के नाम से ही पुकारते हैं इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में भी व्यापारिक केन्द्र होने के कारण लोगों ने इसे मण्डी कहना शुरू कर दिया।

यह जिला मण्डी और सुकेत के विलय से बना है। जो कि बंगाल के सेन राजाओं द्वारा शासित किए जाते थे। इन राजाओं ने मण्डी में बहुत सारे मन्दिरों का निर्माण किया। जिनमें से ज्यादातर आज भी मौजूद है और बहुत प्रसिद्ध है श्यामाकाली, जालपादेवी, भूतनाथ, सिद्धभद्रा, पंचवक्ता, अर्धनारिश्वर आदि मुख्य मन्दिर हैं। इस क्षेत्र के लगभग सभी मन्दिर मुख्यतः शिखर शैली में बनाए गए हैं। पंचवक्ता, त्रिलोकनाथ, अर्धनारिश्वर मन्दिर इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं जोकि भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के संरक्षणाधीन हैं।

यह माना जाता है कि इस क्षेत्र में लगभग ६३ मन्दिर है जिनमें से २९ शिव को, २ गणेश को, १६ शक्ति के विभिन्न रूपों को और १० भगवान विष्णु को समर्पित है। मण्डी क्षेत्र के इन

मन्दिरों में श्यामाकाली मन्दिर का अपना अलग महत्व है। यह मन्दिर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धाार्मिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। श्यामाकाली मन्दिर सेरी बाजार से लगभग एक किलोमीटर दूर टारना पहाड़ी पर स्थित है इसलिए इसे टारना मन्दिर भी कहा जाता है। मण्डी स्टेट गजेटियर के अनुसार मन्दिर का निर्माण सन् (१६६४-१६७९) में राजा श्यामसेन द्वारा किया गया।

मन्दिर से जुड़ी एक घटना के अनुसार यह मान्यता है कि मन्दिर की स्थापना राजा श्यामसेन द्वारा सुकेत के राजा जीतसेन पर विजय प्राप्त करने के बाद की गई थी। राजा जीतसेन श्यामसेन का घोर मजाक उड़ाया करता था। जिसके कारण श्यामसेन ने जीतसेन से युद्ध छेड़ दिया, यह युद्ध बल्ह में लौहारा नामक स्थान पर हुआ। युद्ध के दौरान श्यामसेन ने श्यामाकाली से प्रार्थना की और श्यामसेन युद्ध में विजयी रहा। राजा ने इस जीत की खुशी मे श्यामाकाली मन्दिर का निर्माण करवाया।

मन्दिर से जुड़ी एक अन्य कथा के अनुसार राजा बलवीर सेन ने इस मन्दिर को और आकर्षक रूप दिया। यह धारणा है कि राजा रणजीत सिंह ने अपनी रियासत के लिए अधिक कर वसूली की बात कही परन्तु बलवीर सेन ने अधिक कर देने से इन्कार कर दिया इस पर उसे राजा रणजीत सिंह ने पकड़कर कैद कर दिया। जिससे राजा बहुत परेशान हो गया और अपनी कुल देवी श्यामाकाली की निरन्तर आराधना करने लगा, खुश होकर देवी ने कन्या के रूप में राजा को दर्शन दे दिए। राजा ने प्रण लिया कि वह जब वापिस मण्डी जाएगा तो मन्दिर को सुन्दर तरह से सजाएगा। राजा ने वापिस आते ही साज-सज्जा का कार्य प्रारम्भ करवाया। मन्दिर के गर्भगृह को बाहर (जयपुर-जोधपुर) से कारीगर बुलवाकर सोने की पतियों से सजाया गया।

मन्दिर के गर्भगृह में मुख्य मुर्ति देवी काली की है जो त्रिमुखी है और काले रंग की है। मुख्य मूर्ति की जीभा लाल रंग की है तथा बाहर निकली हुई है। मूर्ति की आंखे काले पत्थर पर सिपियों द्वारा बनाई गई है और बहुत चमकदार हैं। मुख्य मूर्ति शक्ति और सत्ता का एहसास करवाती है और कुछ हद तक वातावरण को डरावना भी बनाती है। मध्य में बड़ी और बांए और दांए छोटी मूर्तियां है। मुख्य मूर्ति के दांए तरफ दुर्गा की महिषासुरमर्दिनी रूप की मूर्ति है और बांई तरफ पंचमुखी शिव की मूर्ति है। इस गर्भगृह में एक भैरव की छोटी मूर्ति भी है। गर्भगृह की छत को स्वर्ण धातु से सजाया गया है यह अमृतसर के स्वर्ण मंदिर की याद दिलाता हैं।

ऐसा माना जाता है कि राजा जोगेन्द्र सेन ने भी गर्भगृह की चित्रकारी का जीर्णोधार करवाया था साथ ही साथ यह भी माना जाता है कि मन्दिर में भिति चित्र को राजा जालिम सेन ने बनवाया था। यह माना जाता है कि भिति चित्र मण्डी कलम के सबसे पुराने भिति चित्रों में से है। इन्हें बनाने के लिए सोने व चांदी का प्रयोग किया गया है साथ ही चमक के लिए खनिज रंगों का भी इस्तेमाल हुआ है।

यह मन्दिर विशाल वृक्षों के मध्य निर्मित है जैसे ही हम मन्दिर के अन्दर प्रवेश करते हैं हम पाते हैं कि मन्दिर का परिसर बहुत विशाल है। गेट के बाएं तरफ हनुमान की मूर्ति है, जिसे देखकर ऐसा लगाता है कि यह मूर्ति बाद में बनाई गई है। इस चतुर्भुज मूर्ति के दाएं हाथों में से एक हाथ में त्रिशुल और दूसरा हाथ खाली है तथा वरद मुद्रा में है। बाएं हाथों मे से एक हाथ मे गदा पकड़ रखी है, दूसरे मे एक सांप के मुख को खुली हथेली पर अंगूठे से दबाए हुए है। यह चार-पांच फुट लम्बा है इस नाग की पूंछ महावीर के पांव को थोड़ा सा छू रही है। महावीर की भव्य और

आकर्षित प्रतिमा के अलावा यहां कुछ और प्रतिमाएं भी देखी जा सकती है जिनमें से एक शिवलिंग भी है। कुछ अन्य मूर्तियां भी है जो पुरानी हो जाने के कारण पहचानी नहीं जा रही है।

गर्भगृह के बाहर प्रदक्षिणा पथ है जिसके दक्षिण दिशा में मण्डी के शिवरात्री मेले के दौरान कामरूनाग की मूर्ति रखी जाती है। मुख्य मंदिर लगभग चार फुट ऊंचे पत्थरों के चबुतरे पर बना है मन्दिर की बाहरी दीवार पर नवदुर्गा के विभिन्न अवतारों का रंगात्मक चित्रण किया गया है। मण्डप की जगह मन्दिर में एक प्रदक्षिणा पथ है जो गर्भगृह को चारों तरफ से घेरता है। मन्दिर के आगे की तरफ गणेश और सिंह की बड़ी-बड़ी मूर्तियां है। मंदिर की परिधि में बाई तरफ पत्थर के एक चबूतरे पर देवी देवताओं की कुछ मूर्तियाँ भी रखी गई हैं।

मन्दिर के बाएं तरफ नीचे प्रांगण में एक पीपल थड़ा बना है जहां देवी के वाहन व्याघ्र की प्रस्तर प्रतिमा रखी है वहीं साथ में बाघनी और शावक की प्रतिमाएं भी रखी है। पीपल के पीछे दीवार से लगे एक आयताकार थड़े पर भगवती महिषासुर मर्दिनी की एक प्रतिमा है। एक शिलापट पर अष्टभुजा दुर्गा का चित्र बना है जिसमें उन्होंने मुकुट धारण किया है साथ ही अपनी दाई भुजाओं में खप्पर, डमक, त्रिशूल और खडग तथा बाई भुजाओं में ढाल, धनुष पकड़ा है। बाएं हाथ में वह राक्षस को उसके जटाओं से पकड़े हुए है और उन्होनें अपना दायां पैर असुर की पीठ पर रखा है। इस प्रतिमा के दाएं ओर पांच दैव आकृतियां और भी है।

मन्दिर के पुजारी के अनुसार गर्भगृह में अष्टधातु से बनी श्यामाकाली की एक बहुमूल्य व अनोखी मूर्ति थी जिसे अब चुरा लिया गया है। इतिहासकारों का मानना है कि यह मूर्ति मण्डी रियासत के राजाओं की कुल देवी थी और इसी मन्दिर में राजपरिवार के बच्चों का मुण्डन संस्कार भी सम्पन्न किया जाता था।

श्यामाकाली माता का यह मंदिर बहुत ही महत्वपूर्ण धरोहर है। यह शिखर एवं गुंबद शैली में बने मन्दिर का एक अद्‌भुत नमूना है। इतिहासकारों द्वारा ऐसा माना जाता है कि मुस्लिम आक्रमणों से कई प्राचीन मंदिर ध्वस्त हुए और जब उन ध्वस्त मंदिरो का पुन: निर्माण आरम्भ हुआ तो उनकी संरचना में शिखर का स्थान गुंबद ने ले लिया। वह मानते है कि मंदिर में गुंबद परम्परा को मुगल वास्तुकला से लिया गया है। परन्तु परम्परा का हम सिक्खों के गुरूद्वारो से भी मान सकते है। इस मन्दिर पर हुए रंग रोगन के कारण इसकी वास्तविक सुन्दरता कही खो सी गई है। परन्तु फिर भी यह हमेशा से ही भक्तो के लिए श्रद्धा का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय

शोधार्थिनी,

श्रीनगर गढ़वाल

सन्दर्भ ग्रन्थ :

१. नीलमणी उपाध्याय, हिमाचल प्रदेश के मन्दिर, भाषा एवं संस्कृति विभाग हि.प्र.

२. Jagmohaon balokhara, Wonderland of Himachal Pradesh.

३. O.C. Handa, Ancient monuments of H.P.

४. Dr. B.L. Kapoor, History and Heritage of the Western Himalayas.

५. O.C. Handa, Panorama of Himalayan Architecture Vol-I

स्थान वृत्त

बोन विहार दोलांजी

चेतराम गर्ग

दोलांजी जिला सिरमौर हिमाचल प्रदेश का एक छोटा सा गांव है। यह गांव सोलन जिला मुख्यालय से १४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। हिमाचल प्रदेश के वानिकी विश्वविद्यालय नौणी के सामने दोलांजी गांव पड़ता है। सोलन से १० कि.मी. ओछ घाट है। ओछ घाट से एक मार्ग बायें हाथ पर नौणी चला जाता है और दायें हाथ पर दोलांजी मार्ग है। चलते हुए दो कि.मी. पर काली घाट और काली घाट से दो किलोमीटर दोलांजी है। इस दोलांजी गांव में प्राचीन घुमन्तु जाति बरड बस्ती भी है। अब वे घुमन्तु कम तथा सरकार द्वारा जमीन आबंटन के बाद एक जगह बसने शुरू हुए हैं। यहीं पर आज बोन धर्म अनुयायियों का विहार स्थापित हुआ है।

तिब्बती बौद्ध एवं बोन धर्मावलम्बियों को चीन ने मार्च १९५९ में तिब्बत को हड़पकर विस्थापित होने पर विवश कर दिया और इनका शान्त जीवन अशान्त हो गया। तब से ये विस्थापित तिब्बती अनेक शिविरों में भारत सहित नेपाल, भूटान आदि देशों में बस रहे हैं। इन विस्थापित तिब्बतियों में अधिकांश संख्या बौद्ध धर्म को मानने वालों की है तथा मुट्ठीभर बोन धर्मावलम्बी है। बोन धर्म तिब्बत का प्राचीन धर्म है जिसकी अपनी भाषा बोली भी रही है। ७वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म के फैलाव के कारण बोन धर्मावलम्बियों की संख्या भी घटी तथा उनकी मूल भाषा का भी ह्रास हुआ। विस्थापित होने के बाद तो और भी विखराव पैदा हो गया, विस्थापन के दौरान बोन धर्म मानने वालों की एक टोली कुल्लू मनाली की ओर आई। यहां वे अपनी आजीविका के लिए सड़क निर्माण कार्य में लग गए। जलवायु अनुकूल न होने के कारण इन लोगों का स्वास्थ बिगड़ने लगा। कुछ लोग तो अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गए।

बोन धर्मियों के लिए विहार की इच्छा

कुल्लू मनाली आए इन बोन धर्मियों में एक थे शेख लोडो। ये अपने धर्म के प्रमुख 'संघ राज मनरी बोन विहार तिब्बत' रह चुके थे। उन्हें लगा कि अपने धर्म के अनुयायियों के लिए एक बोन विहार की स्थापना की जानी चाहिए। जहां पर अध्यात्म, धर्म आदि सब प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध हो। उसके लिए उन्होंने अपने धर्म के अनुयायियों, लामाओं, भिक्षुओं की सभा का आयोजन किया तथा सबके सामने अपने मन की इच्छा प्रकट की। सर्वसम्मति से यह कार्य धन अर्जन एवं स्थान की खोज सहित तिन-जिन नम-दक जो मुख्य उपाध्याय (Chief tutor) थे, को सौंपा गया। उन्होंने इस कार्य के लिए दिन रात एक कर दिया और सफलता प्राप्त की।

बोन विहार दोलांजी

बोन विहार दोलांजी में जगह प्राप्त हो गई। १९६७ में यह शरणार्थी बस्ती अस्तित्व में आ गई। विधिवत रूप से तिब्बतियन बोनपो फॉउडेशन (Tibetan Bonpo Foundation) के नाम से इस का पंजीकरण हुआ। इस बस्ती में अलग-अलग स्थानों से कोई ७० परिवारों की बस्ती को रहने तथा उपयोग हेतु जमीन उपलब्ध करवाई गई। श्रद्धेय संघ राज इस चुनी हुई समिति के अध्यक्ष हैं।

बोन संघ राज की चुनाव प्रक्रिया

मनरी बोन विहार के ३२वें संघ राज शेख लोडो की देह त्याग के पश्चात् शेख तनपइ व्याल छन (संघ राज युङ-डुङ-लिङ विहार) द्वितीय को अस्थाई बोन समुदाय का मुख्य आध्यात्मिक गुरु बनाया गया। उन्होंने अपने धर्म की प्राचीन पद्धति का अनुसरण करते हुए खाली हुए पद के वास्तविक संघराज के चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ की। परम्परागत् विधानानुसार समस्त बोन गेशे को एकत्र कर चुनाव पद्धति का अनुसरण किया। एक कलश स्थापित किया गया। उस कलश में अगले संघ राज के नाम की पतियाँ डाली गई। यह सारा कार्य जटिल धार्मिक एवं निष्पक्ष प्रक्रिया है। उसमें से जो नाम निकला वह गेशे संग्ये तनज़िन जङ पोङ (जन्म १९२९) का आया। वे उस समय नार्वे ओसलो विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर थे। गेशे संग्ये तनजिन दोलांजी पहुंचकर मनरी बिहार के ३३वें संघराज की पवित्र पदवी पर विराजमान हुए। उन्हें जो उसके बाद नया नाम मिला वह लुङ तोग तनपहञिमा है।

मनरी विकास

मनरी विहार दोलांजी के मुख्य भवन का कार्य १९६७ में प्रारम्भ हुआ और १९७८ में बनकर तैयार हुआ। यह मुख्य भवन, लामा विद्या पीठ केन्द्र, समृद्ध बोन पोथी पुस्तकालय, अन्य तिब्बती पुस्तकालय, संग्रहालय, संगणक कक्ष तथा अन्य विद्वानों के अध्ययन का केन्द्र है। संग्रहालय में प्राचीन पासा गोटिया, शल्य चिकित्सा के शस्त्र, तन्त्र विद्या के विभिन्न नमूने, औषधि विज्ञान की जानकारियां, तथा सांस्कृतिक परिधान विद्यमान हैं। मुख्य मन्दिर में शंख, स्वास्तिक आदि धार्मिक चिन्हों से युक्त विविध रंगों के बेल बूटों को बनाया जाता है यह सारा कार्य मक्खन से होता है। साल भर इसे रखा जाता है और उसके उपरान्त उसे बदल दिया जाता है।

यहां पर भिक्षु वास, अनाथ बच्चों के लिए रहने-खाने एवं विद्या अध्ययन के लिए विद्यालय बनाया गया है। अतिथि भवन तथा ज्योतिष शास्त्र, तन्त्र शास्त्र आदि के लिए अलग से निर्माण कार्य चल रहा है।

शिक्षण प्रबन्धन

बोन धर्मावलम्बियों का यह एक मात्र शिक्षण एवं अध्ययन केन्द्र है। जहां २०० भिक्षु, २५० अनाथ बच्चे रहते हैं और ७० भिक्षुणियां अलग से बने विक्षुणी विहार (रतना भिक्षुणी विहार) रहती हैं।

विहार में प्रत्येक भिक्षु, लामा आदि सभी को वहां की निश्चित दिनचर्या एवं नियमों का पालन करना होता है। जिसमें धार्मिक शिक्षा का गहन अभ्यास, धार्मिक अनुष्ठानों, कर्मकाण्डों आदि में सभी की भागेदारी अपेक्षित होती है। १५ वर्ष के गहन अध्ययन के पश्चात एक भिक्षु गेशे की परीक्षा पासकर पारितोषिक रूप में 'गेशे' की उपाधि प्राप्त करता है। 'गेशे' आंग्ल भाषा में Dr. of Theology होता है तथा इसे भारतीय बौद्ध साहित्य में संस्कृत भाषा में "कल्याण मित्र" कहा गया है। कल्याण मित्र का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है।

विहार का अनुशासन नियम (विनय), बोन धर्म का इतिहास, भोट व्याकरण, मूल-भूत क्रमिक अध्यात्म विकास पथ, तर्क शास्त्र, मुक्ति शास्त्र, तर्क विद्या और कर्मकाण्ड आदि मुख्य विषय है। सम्बन्धित कलाओं में चित्र (चित्रपट), मण्डल चित्रण, तीरमा (बलि) और नमखा (झाली रचना) सम्मिलित है। खगोल शास्त्र, ज्योतिष विद्या, आयुर्वेद, दर्शन, अध्यात्म दर्शन, ब्रह्माण्ड विज्ञान, सृष्टि का सिद्धान्त, आत्म तत्व विज्ञान, प्रज्ञा शास्त्र, तन्त्र और अतियोग तन्त्र विद्या सम्मिलित है।

लामाओं को शास्त्रार्थ करने का अभ्यास करवाया जाता हैं। वरिष्ठ लामाओं से कनिष्ठ लामा द्वारा प्रश्न पूछता जाता है और वरिष्ठ लामा उसका उत्तर देता है। यह प्रक्रिया खुले प्रांगण में चलती है।

भिक्षु मार्ग के नियम कठिन है। धीरे-धीरे उन नियमों पर चलना होता है। मार्ग पर न चल पाने पर भिक्षु पथ को छोड़ कर जाना होता है। इस के विभिन्न स्तर हैं।

युङ-डुङ बोन मोनास्टिक सेन्टर

वर्तमान में मुख्य विहार को युङ-डुङ बोन मोनास्टिक सेन्टर, (Yung-Dung bon monastic centre) YBMCS के नाम से १२ फरवरी, २००१ के रूप में पंजीकरण किया गया है। इसके निम्न उद्देश्य हैं।

१. प्राचीन बोन धर्म के धार्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण तथा तिब्बती परम्पराओं की रक्षा।

२. युङ-डुङ बोन विहार के समस्त शाखाओं, उपशाखाओं और YBMCS द्वारा आरम्भ किए गए कार्यों को बढ़ाना।

३. बच्चों, किशोरों, लामाओं (बोन) के लिए विद्या अध्ययन का प्रबन्ध करना।

शोध संस्थान नेरी,
जिला हमीरपुर (हि.प्र.)

मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश

सिद्ध शक्ति पीठ माता श्री नयनादेवी जी का मन्दिर उत्तरी भारत का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। यहां पर न केवल भारतवर्ष से परन्तु विदेशों से भी बड़ी संख्या में श्रद्धालु आते हैं। हर वर्ष यहां पर तीन बड़े मेले चैत्र, श्रावण व आश्विन मास के नवरात्रों में होते हैं तथा साल भर श्रद्धालु माता जी के दर्शनों के लिए भारी संख्या में आते रहते हैं। मन्दिर नयास द्वारा यात्रियों की सुविधा हेतु निम्न प्रबन्ध किए गए हैं :

उपलब्ध सुविधायें :

- मन्दिर परिसर एवं लंगर में आधुनिक तकनीक द्वारा मशीनों से सफाई व्यवस्था का प्रबन्ध किया गया है।
- बस अड्डा पर आधुनिक यात्री निवास मातृ आंचल में ठहरने की व्यवसथा।
- आयुर्वेदिक औषधालय में निःशुल्क चिकित्सा सुविधा।
- दोनों समय लंगर में निःशुल्क भोजन व नाश्ता।
- धर्मशालाओं में निःशुल्क कमरों का प्रावधान।
- कौलां वाला टोवा से मन्दिर परिसर तक विभिन्न स्थलों पर सुलभ शौचालयों एवं स्नानागारों की वयवस्था।
- मातृ आंचल वीआईपी कमरों की व्यवस्था।
- मातृ आंचल में कैन्टीन में अच्छा एवं सस्ता खाना उपलब्ध।
- नये बस अड्डे पर छोटे वाहन खड़ा करने की सुविधा।
- यात्रियों के सामान रखने के लिए बस अड्डे पर क्लॉक रूम उपलब्ध।
- संस्कृत महाविद्यालय में निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध।
- यात्रियों की सुविधार्थ निःशुल्क कमरों, कम्बल ओर रजाईयों का प्रबन्ध।
- श्रद्धालुओं के लिए शुद्ध देशी घी का हलवा न्यास की दुकान पर उपलब्ध।
- श्रद्धालुओं की सुविधार्थ मन्दिर के समीप मातृ शरण भवन का निर्माण।
- श्रद्धालुओं की सुविधार्थ मन्दिर वाले रास्ते में वर्षा शालिकाओं का निर्माण।
- बस अड्डा से मन्दिर तक दोहरे रास्ते का निर्माण।
- मन्दिर के समीप हवाई पुल का निर्माण।
- बस अड्डा के समीप यात्रियों को ठहरने के लिए मातृ छाया भवन का निर्माण।
- मन्दिर परिसर में संगमरमर बदलना।
- कौलां वाला टिब्बा व मन्दिर श्री नयना देवी जी के क्षेत्र में फ्लड लाईट का लगवाना।

प्रस्तावित योजनाएं :

- मन्दिर परिसर का सौन्दर्यकरण।
- श्री नयना देवी जी के क्षेत्र का मास्टर प्लान बनवाना।
- घंडावल में पार्किंग स्थल का निर्माण।
- मन्दिर के रास्ते में अतिरिक्त शोचालयों का निर्माण।
- कौलां वाला टिब्बा से श्री नयना देवी जी तक सड़क को पक्का करना।
- कौलां वाला टिब्बा में स्वागत द्वार का निर्माण।
- कौलां वाला टिब्बा में तालाब का सौन्दर्यकरण एवं उसमें साफ पानी डालना।
- कौलां वाला टिब्बा में शौचालय एवं स्नानागृह का निर्माण।
- श्री नयना देवी जी क्षेत्र में पौधरोपण।
- वर्षा के जल संग्रहण, भण्डारण करना एवं प्रबन्धन।
- सिंह द्वार गेट–2 के पास हवाई पुल का निर्माण।

सुखदेव सिंह
मन्दिर अधिकारी,
मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश),
दूरभाष : 288048, 288021

रोहन चंद ठाकुर (भा.प्र.स.)
अध्यक्ष (एस.डी.एम.)
मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)
दूरभाष : 224798(का.), 224799(आ.)

रितेश चौहान (भा.प्र.स.)
आयुक्त (उपायुक्त)
मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)
दूरभाष : 224155(का.), 224150(आ.)